संबोधि के क्षण

मैं अकेला गाता रहूंगा

मेरे प्रिय आत्मन,

बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य को किसी न किसी प्रकार डिसीप्लीन, अनुशासन की जरूरत है।

जरूरत हैं--अनुशासन की जरूरत है। लेकिन वैसे अनुशासन की नहीं, जैसा आज तक रहा है। अनुशासन दो प्रकार का है। एक तो वह, जो बाहर से थोप दिया गया है, और दूसरा वह, जो स्वयं के भीतर से आया है। अब तक हमने यही किया है कि सब डिसीप्लीन, सब अनुशासन ऊपर से थोपने की कोशिश की है। ऊपर से हमने सिखाया है आदमी को किया क्या करना है और क्या नहीं करना है! उस आदमी को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि जो करना है वह करने योग्य है, जो नहीं करना है वह नहीं करने योग्य है। हमने सिर्फ ऊपर से नियम बिठा लिए हैं। उन नियमों के दोहरे दुष्परिणाम हुए हैं। एक तो उन नियमों के कारण व्यक्ति का अपना विवेक विकसित नहीं हो सकता है और दूसरा, ऊपर से थोपे गए नियम मनुष्य के भीतर विद्रोह पैदा करते हैं। व्यक्ति, जितना बुद्धिमान होगा, उतना स्वयं के ढंग से जीना चाहेगा। सिर्फ बुद्धिहीन व्यक्ति पर ऊपर से थोपे गए नियम प्रतिक्रिया, रिएक्शन पैदा नहीं करेंगे।

तो, दुनिया जितनी बुद्धिहीन थी, उतनी ऊपर से थोपे गए नियमों के खिलाफ बगावत न थी। जब दुनिया बुद्धिमान होती चली जा रही है, बगावत शुरू हो गयी है। सब तरफ नियम तोड़े जा रहे हैं। मनुष्य बढ़ता हुआ विवेक स्वतंत्रता चाहता है।

स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है, लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि मैं अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पूर्ण निर्णय करने की स्वयं व्यवस्था चाहता हूं, अपनी व्यवस्था चाहता हूं। तो अनुशासन की पुरानी सारी परंपरा एकदम आकर गड्ढे में खड़ी हो गयी है। वह टूटेगी नहीं। उसे आगे नहीं बढ़ाया जा सकता, उसे चलाने की कोशिश नहीं ही करें, क्योंकि जितना हम उसे चलाना चाहेंगे, उतनी ही तीव्रता से मनोप्रेरणा उसे तोड़ने को आतुर हो जाएगी। और उसे तोड़ने की आतुरता बिलकुल स्वभाविक, उचित है। गलत भी नहीं है।

तो अब एक नए अनुशासन के विषय में सोचना जरूरी हो गया है। ऐसे अनुशासन के विषय में सोचना जरूरी हो गया है, जो व्यक्ति के विवेक के विकास से सहज फलित होता है। एक तो यह नियम है कि दरवाजे से निकलना चाहिए, दीवार से नहीं निकलना चाहिए।यह नियम है। जिस व्यक्ति को यह नियम दिया गया है, उसके विवेक में कहीं भी यह समझ में नहीं आया है कि दीवार से निकलना, सिर तोड़ लेना है। और दरवाजे से निकलने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। उसकी समझ में यह बात नहीं आयी है। उसके विवेक में यह बात आ

जाए तो हमें कहना नहीं पड़ेगा कि दरवाजे से निकलो। वह दरवाजे से निकलेगा। निकलने की यह जो व्यवस्था है उकसे भीतर से आएगी, बाहर से नहीं। अब तक शुभ क्या है, अशुभ क्या है, अच्छा क्या है, बुरा क्या है, यह हमने तय कर लिया था, वह हमने सुनिश्चित कर लिया था। उसे मानकर चलना ही सज्जन व्यक्ति का कर्तव्य था। अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो रहा है, नहीं होना चाहिए।

मैं जो कह रहा हूं, वह यह है कि एक-एक व्यक्ति के भीतर उतना सोचना, उतना विचार, उतना विवेक जगा सकते हैं। उसे यह दिखाई पड़ सके कि क्या करना ठीक है, और क्या करना गलत है। निश्चित ही अगर विवेक जगेगा, तो करीब-करीब हमारा विवेक एक से उत्तर देगा, लेकिन उन उत्तरों का एक सा होना बाहर से निर्धारित नहीं होगा, भीतर से निर्धारित होगा। प्रत्येक व्यक्ति के विवेक को जगाने की कोशिश की जानी चाहिए और विवेक से जो अनुशासन आएगा, वह शुभ है। फिर सबसे बड़ा फायदा यह है कि विवेक से आए हुए, अनुशासन में व्यक्ति को कभी परतंत्रता नहीं मालूम पड़ती है।

दूसरे के द्वार लादा गया सिद्धांत परतंत्रता लाता है। और यह भी ध्यान रहे, परतंत्रता के खिलाफ हमारे मन में विद्रोह पैदा होता है। विद्रोह से नियम तोड़े जाते हैं, और अगर व्यक्ति स्वतंत्र हो, अपने ढंग से जीने की कोशिश से अनुशासन आ जाए, तो कभी विद्रोह पैदा नहीं होगा। इस सारी दुनिया में नए बच्चे जो विद्रोह कर रहे हैं, वह उनकी परतंत्रता के खिलाफ है। उन्हें सब ओर से परतंत्रता मालूम पड़ रही है।

मेरी दृष्टि यह है कि अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत मंहगा काम है अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत खतरनाक बात है। क्योंकि परतंत्रता तोड़ने की आतुरता बढ़ेगी, साथ में अच्छी चीज भी टूटेगी। क्योंकि आपने अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ी है। अच्छी चीज के साथ तो स्वतंत्रता ही हो सकती है; क्योंकि अच्छी चीज के अच्छे होने के भीतर स्वतंत्रता का स्वप्न ही अनिवार्य है, अन्यथा हम उसके विवेक को जगा सकते हैं। शिक्षा बढ़ी है, संस्कृति बढ़ी है, सभ्यता बढ़ी है, ज्ञान बढ़ा है। आदमी के विवेक को अब जगाया जा सकता है। अब उसका ऊपर से थोपना अनिवार्य नहीं रह गया है।

तो, मैं नहीं चाहता हूं कि सब अनुशासन उठ जाए। मैं कहता हूं, ऐसा अनुशासन आए, जो विवेक की छाया बने, जो ऊपर से न थोप दिया गया हो। एक बच्चे से हमने कह दिया है, क्रोध बुरा है। क्रोध नहीं करना। क्रोध उठेगा--क्रोध कितना ही बुरा हो, जीवन की व्यवस्था में सही उसकी जरूरत है। और अगर कोई बच्चा ऐसा पैदा हो जाए जिसमें क्रोध जन्म से ही न हो, तो उस बच्चे को आप कुछ न सिखा सकेंगे, न बड़ा कर सकेंगे, न बुद्धि दे सकेंगे, न उस बच्चे में कोई जान होगी, न कोई रीढ़ होगी। वह बच्चा एक कोने में बैठा-बैठा मर जाएगा। क्रोध एक बल है, जो जरूरी है जीवन के लिए। उस क्रोध के आधार पर बच्चों की जिंदगी में बहुत कुछ आएगा, जो शुभ है।

तो क्रोध एकदम इनकार कर देना खतरनाक है। प्रकृति और परमात्मा क्रोध दे रहा है। उसका कहीं अर्थ है। एक आदमी हो, ऐसा सोचे जिसे जन्म से क्रोध नहीं है, तो आप पाएंगे कि उसमें जीवन ही क्षीण हो गया है। सब तरह से सुस्त, ढीला और असली हो होगा। और उसे किसी के लिए भी गतिमान नहीं किया जा सकता। अगर आप उसको गाली देंगे, तो वह बैठकर सुनेगा। अगर आप उसे धक्का मारेंगे, तो वह धक्का सह लेगा और रह जाएगा। अगर आप उससे कहेंगे कि सब दूसरे आगे निकले जा रहे हैं, तुम आगे नहीं निकल रहे हो, तो वह कहेगा ठीक है। अगर उसके भीतर क्रोध का तत्व नहीं है, तो भीतर गति का तत्व भी नहीं होगा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि क्रोध शुभ है। मतलब केवल इतना है कि क्रोध एक सीमा तक सार्थक है। फिर वह व्यर्थ होना शुरू हो जाता है। एक सीमा तक क्रोध भी सीढ़ी है, और एक सीमा के बाद खतरनाक है। एक उम्र तक क्रोध का होना जरूरी है। और एक उम्र तक क्रोध सिखाया जाना चाहिए, बजाए रोके जाने के।

लेकिन बच्चों को ऐसा अनुशासन सिखा दें कि क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध नहीं करना है, तो बच्चा क्या? वह सिर्फ क्रोध को दबाएगा, सप्रेस करेगा, अपने को रोकने की कोशिश करेगा। और ध्यान रहे, छोटा-छोटा क्रोध निकल जाए, तो खतरनाक नहीं होता। क्रोध इकट्ठा हो जाए तो खतरनाक होता है। रोज अगर क्रोध निकले, तो उसकी मात्रा इतनी कम होगी जिसको कोई हिसाब नहीं। वह ऐसा ही होगा। जैसे रोज घर का कचरा बाहर फेंक देते हैं। कचरा फेंकना बंद कर दें, कचरा पैदा होना जारी रहेगा, तो घर में महीने दो महीने में घूरा लग जाएगा और रहना मुश्किल हो जाएगा। तब कचरा फिर फेंकना पड़ेगा। लेकिन तब वह कचरा बहुत दिखाई पड़ेगा और खतरनाक भी हो सकता है।

क्रोध भी यदि थोड़ा बहुत निकल जाए, तो खतरनाक नहीं है। इकट्ठा कर लें अगर हम क्रोध को, तो वह खतरनाक है।समझा यह जाता है कि लोग हत्याएं करते हैं, आत्म हत्याएं करते हैं, वे ऐसे लोग हैं, जो क्रोध को इकट्ठा कर लेते हैं। जो आदमी रोज-राज क्रोध कर लेता है, वह कभी हत्या नहीं कर पाता। वह उतना क्रोध नहीं जुटा पाता कि किसी की हत्या करने के लिए पागल या उत्तेजित हो जाए। इतने पागलपन के लिए एक ज्यादा मात्रा चाहिए। तो रोज छोटी-छोटी बात में क्रोधित हो जाने वाला आदमी खतरनाक नहीं होता है, कभी बहुत खतरा नहीं कर सकता है। एक आदमी--रोज छोटे-मोटे क्रोध कर लेने वाला आदमी--सरल होगा। इस आदमी की बजाय जो क्रोध दबाता चला जाएगा, वह बहुत जटिल हो जाएगा। उसके भीतर क्रोध की इतनी मात्रा इकट्ठी हो जाने वाली है कि एक दिन विस्फोट हो होगा। वह विस्फोट महंगा पड़ता है। उस विस्फोट का कोई भी परिणाम हो सकता है। पर बच्चे को हम सिखा रहे हैं, एक अनुशासन दे रहे हैं कि क्रोध बुरा है, और हम सोच रहे हैं कि उसे अच्छा (भला) बना रहे हैं। हम उसे अच्छा नहीं बना रहे हैं।

मेरी दृष्टि में, बच्चे को, क्रोध बुरा है, ऐसा ऊपर से नियम देना गलत है। बच्चे को विवेक से बदलने की जरूरत है कि वह जान सके कि क्रोध क्या है? क्रोध बुरा है, या भला है, यह नहीं--क्रोध क्या है? क्रोध में उस बच्चे के मन में क्या हो जाता है, इसे वह जानने के योग्य हो सके। धीरे-धीरे यह हम समझा सकेंगे और बच्चे बहुत जल्दी समझ सकते हैं।

यूरोप में एक फकीर था गुरजिएफ। उसके आश्रम में जो भी भर्ती होता, उससे वह पहले से कहता कि क्रोध करना सीखो। और क्रोध की ट्रेनिंग देता, प्रशिक्षण देता कि क्रोध करो। इतनी तीव्रता से करो, इतनी गति से करो, इतने जोर से, इतने मन से करे कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व क्रोधित हो जाए। तभी तुम जान सकते हो कि क्रोध क्या है?

जब एक आदमी पूरे क्रोध में भरा है, तब गुरजिएफ कहेगा--देखो, वह आदमी को चिल्लाता है कि देखा--और ऐसी सिचुएशन पैदा करेगा कि कोई आदमी, जो नया है, वह बिलकुल पागल हो जाए क्रोध में। तब वह चिल्लाकर कहेगा, देखो, स्टाप एंड सी, और भीतर देखो कि क्रोध क्या है?

इतने, ज्वलंत रूप में जब क्रोध चारों तरफ जल रहा हो, और कण-कण में आग भर दी हो, प्रत्येक दफा चौंककर आदमी भीतर देख ले कि क्रोध क्या है, तो उसे झलक मिलती है। हमें कभी क्रोध की झलक नहीं मिलती। जब हम क्रोध में होते हैं, तब बेहोश होते हैं। जब होश में आते हैं, तब क्रोध चला गया होता है। हमारा कभी मिलना नहीं होता क्रोध से, हमारा कभी अनकाउंटर नहीं होता कि आमन-सामने मिल जाए, देख लें कि क्या है। तो गुरजिएफ कहता था, जिसने क्रोध को नहीं देखा, उसके भीतर क्रोध के संबंध में अनुशासन कभी पैदा नहीं होगा ऊपर से थोपा हुआ नियम बह जाएगा।

और ठीक है यह बात। क्रोध की पूरी स्थिति...और बच्चे जिते अच्छे ढंग से क्रोधित हो सकते हैं, बड़े नहीं हो सकते। और अगर बच्चे का क्रोध आपने देखा है, तो आप पाएंगे कि उस क्रोध में भी एक सौंदर्य है, एक गति है, एक डायमेंशन है। एक बच्चा जब पूरे क्रोध से भरता है--क्योंकि बच्चा पूरे क्रोध से भरता है--वह पैर पटक रहा है, वह चिल्ला रहा है, वह कूद रहा है, उसका कण-कण लाल हो गया है, आंखें जल गयी हैं। उस वक्त बच्चे को जगाने का हमें श्रम करना चाहिए कि तू देख, यह क्रोध क्या है? हम छोड़ ही देते इस कमरे को, द्वार बंद कर देते कि तू देख, कि तेरे भीतर क्या हो रहा है? ताकि क्रोध क्या है, इससे तू परिचित हो जाए। यह जिंदगी भरी साथ रहेगा, इससे बहुत काम भी लेना है।

क्रोध से परिचित करने की जरूरत है। और ऐसे ही जीवन की सारी वृत्तियों से, जिनको हम बुरा कहते हैं--सारी वृत्तियों से परिचित कराने की जरूरत है, इनकी पूर्णता में, पूरी गहराई में; तो हमारे भीतर एक विवेक, एक अवेयरनेस पैदा होती है कि क्रोध क्या है। और यह भी पता चलता है कि क्रोध एक बड़ी शक्ति है, जिसको सदुपयोग भी है और दुरुपयोग भी। और मैं मानता हूं कि विवेक से आदमी धीरे-धीरे क्रोध का सदुपयोग करना सिखेगा, दुरुपयोग बंद करेगा। पहला कदम क्रोध खत्म करने का नहीं होगा, पहला कदम क्रोध के सदुपयोग का होगा। क्रोध के सदुपयोग हैं। जो आदमी क्रोध का सदुपयोग करने में समर्थ हो जाएगा, वह

क्रोध करते क्षण में भी अभिनय ही करवाएगा, भीतर वह क्रोध के बाहर खड़ा होगा। नहीं तो फिर प्रयोग नहीं कर सकता है।

हम जिस चीज का भी उपयोग करते हैं, उससे अलग हो जाते हैं। एक आदमी अगर इतना सचेत हो गया है कि क्रोध का भी सदुपयोग करता है, तो वह आदमी कभी क्रोधित नहीं है। सिर्फ बाहर की घटना रह गयी है, जिसका वह उपयोग कर रहा है। और भीतर वह क्रोध से, बिलकुल बाहर है, तभी उपयोग कर सकता है, नहीं तो क्रोध उसका उपयोग कर लेगा। दो चीजें हैं: अगर हम बेहोश हैं, तो क्रोध हमें जैसा चाहेगा वैसा कर डालेगा। और अगर हम होश में हैं, तो क्रोध से हम जो करना चाहेंगे वह कर लेंगे।

तो पहला कदम क्रोध का अंत करने का हनीं होगा।विवेक विकसित होगा तो क्रोध का सदुपयोग शुरू होगा। दूसरा कदम, जब सदुपयोग में पूरा सामर्थ्य व्यक्ति का पैदा हो जाता है, तो अब दुरुपयोग क्रोध का नहीं हो सकता है, अर्थात अब क्रोध उससे दुरुपयोग नहीं करवा सकता है, वह बेहोश नहीं है। उसने होशपूर्वक क्रोध को इंस्ट्रमेंट और साधन बना लिया है। जब यह समझ पैदा हो जाती है, तब उसे दिखाई पड़ता है कि सदुपयोग में भी गहरे नुकसान पहुंच रहे हैं। यह तब तक दिखाई नहीं पड़ता है, जब तक हम सदुपयोग करना न सिख लें। तब दिखाई पड़ता है, सदुपयोग तो हो रहा है, लेकिन दूसरे के लिए हो रहा है। जैसे एक बाप अपने बेटे पर नाराज हो रहा है। कभी नाराजगी बहुत काम की होती है, कभी बहुत सार्थक हो सकती है। कभी बच्चों के मन पर उस नाराजगी के क्षण में कोई ऐसी छाप पड़ सकती है, जो जिंदगी भर के लिए कीमती हो जाए। लेकिन वह उपयोग करनेवाले पर निर्भर है। एक ऐसी छाप भी पड़ सकती है कि जिंदगी भर के लिए बाप दुश्मन हो जाए।

सच तो यह है कि अगर बाप क्रोध करना जानता हो, तो बाप को क्रोध में बेटे को प्रेम का पता चलेगा ही। अगर उपयोग करना जानता है, तो जानेगा कि यह प्रेम का सबूत है। अगर बाप उपयोग करना जानता हो, तो क्रोध में प्रेम ही दिखाई पड़ेगा, और उपयोग करना न जानता हो, तो प्रेम में भी प्रेम दिखाई पड़नेवाला नहीं है। बाप प्रेम करेगा और बेटा समझेगा कि कोई तरकीब है--कुछ करवाने के इरादे में है। और वे बच्चे अभागे हैं, जिनको मां बाप न कभी उन पर ज्वलंत क्रोध नहीं किया। ज्वलंत क्रोध करना बड़ी बात है। ज्वलंत क्रोध का मतलब हैं कि मां बाप पूरी तरह इनकार कर रहे हैं अपने-अपने पूरे व्यक्तित्व को, कि यह गलत है। थोप नहीं रहे हैं उसके ऊपर कि तू भी गलत मान, लेकिन उनके पूरे व्यक्ति को गलत लग रही है वह बात, और वह आशा से भर गए हैं। यह छाप अगर बच्चे पर छूट जाए तो उपयोगी हो सकती है; लेकिन सिर्फ उपयोग करनेवाला ही यह छाप छोड़ सकता है।

एक लड़की को मैं जानता हूं। उसका डायवोर्स हो गया है, पति से अलग हो गयी है। तो मां बाप उसकी बहुत चिंता करने लगे कि वह दुखी न रह जाए। तो कभी उससे नाराज न होते। नाराजगी का मौका होता तो भी वह टाल जाते; क्योंकि वह बहुत ही दुखी है। उसको कोई दुख नहीं देना है। वह जो कहती, मान लेते हैं--मानने योग्य हो या न हो। वह जो मांग

करती, पूरी कर देते, चाहे वह उनके खर्च की सीमा के भीतर हो या न हो। मां बाप इस खयाल में थे कि वह उस लड़की को सुखी कर सकें। उस लड़की ने मुझसे कहा कि मैं इस घर में एक मिनट नहीं रहना चाहती हूं। ऐसा लगता है कि मुझे कोई भी प्रेम नहीं करता है; क्योंकि कोई मुझे न कभी इनकार करता है, न मुझसे की नाराज होता है। ऐसा लगता है कि मैं यहां--मेरा किसी से कोई गहरा संबंध नहीं है। ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ अभिनय कर रहे हैं कि वे क्रोध भी करना चाहते हैं, पर नहीं करते। कहीं मुझसे दुख न लग जाए। ऐसा लगता है कि सब मुझ पर दया कर रहे हैं, और दया बहुत अपमानजनक है।

कभी आपने खयाल किया है कि दया बहुत अपमानजनक है? प्रेम का सब्स्टीटयूट नहीं होता। जिसको हम प्रेम करते हैं, वह दया नहीं मानता और जिस दिन आपने दया देना शुरू किया, प्रेम खत्म। वह जानता है कि प्रेम खत्म हो चुका है; क्योंकि दया जिस पर हम करते हैं, वह नीचा हो जाता है, दीन हो जाता है, हीन हो जाता है। प्रेम जिसे हम करते हैं, उसको समान तल पर खड़ा करते हैं। दया हम जिस पर करते हैं, उसको नीचे खड़ा कर देते हैं।

कोई पत्नी दया नहीं चाहती पति से। कोई बेटा अपनी मां से दया नहीं चाहता। प्रेम करता है। प्रेम वक्त पर नाराज भी होता है। असल में प्रेम हीन नाराज हो सकता है। क्योंकि प्रेम को पता है, नाराजगी से कुछ भी टूटनेवाला नहीं है। प्रेम इतना गहरा है कि नाराजगी से कुछ भी टूटनेवाला नहीं है। प्रेम इतना गहरा है कि नाराजगी की गहरी से गहरी चोट भी सिर्फ वृक्ष को हिलाएगी, और कुछ भी नहीं कर पाएंगी। थोड़ी देर बाद हवाएं चली जाएंगी, वृक्ष अपनी जगह खड़ा हो जाएगा। सिर्फ प्रेम ही क्रोध कर सकता है। जिससे हमने प्रेम नहीं किया है, उससे हम क्रोध भी नहीं कर सकते। इसीलिए अजनबी से हमारा क्रोध नहीं होता। जिससे हम जितने ज्यादा निकट हैं, उससे हमारा क्रोध होता है। जितनी निकटता बढ़ती है, उतनी क्रोध की संभावना बढ़ती है। क्रोध का उपयोग अगर कोई सीख ले, तो क्रोध की तीखी छाया प्रेम की ही होती है।

लेकिन हमें क्रोध का कोई उपयोग मालूम नहीं है। बस, बचपन से सिखा दिया गया है कि क्रोध बुरा है और उसको दबाए चले जाते हैं। फिर कभी करते हैं, लेकिन वह करना बिलकुल बेहोश होता है। उसका कोई शुभ परिणाम नहीं होता है, सिवाय अशुभ के कुछ नहीं होता। जब अशुभ परिणाम होता है, तो हम पुरानी धारणा को फिर मजबूत कर लेते हैं कि देखो, बच्चों को यह सिखाया था कि क्रोध बुरा है, यह बुरा हो गया। फिर हम दबाने लगते हैं। फिर एक व्हिसियस सर्किल, एक एक दुश्चक्र शुरू हो गया है। फिर हम दबाएंगे, फिर क्रोध फूटेगा। जब फूटेगा, तब नुकसान होगा। जब नुकसान होगा, तब पहले की पुरानी धारणा फिर मजबूत हो जाएगी। फिर इकट्ठा करेंगे, फिर दबाएंगे--पूरी जिंदगी एरंड, क्रोध और एरंड, उसी में हम जाएंगे। और यह बात मैं क्रोध के लिए ही नहीं कह रहा हूं, यह सब वृत्तियों पर लागू है।

जब कोई व्यक्ति क्रोध का सम्यक उपयोग करना सीख जाता है, सम्यक क्रोध करना सीख जाता है, राइट एंगर, तब उसे पहली दफा दिखाई पड़ता है कि ठीक क्रोध से भी दूसरे की भूल लाभ हो जाए, लेकिन मुझे नुकसान ही नुकसान होता है। (कहीं न कहीं मेरे भीतर कुछ-कुछ सुविधा है।) तब वह क्रोध के ऊपर भी उठने का भी करेगा। लेकिन अब इस श्रम में दमन नहीं होगा। समझ होगी, बुद्धि और विवेक होगा। अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि सांप जा रहा है, तो आपको सांप के ऊपर से चलने की इच्छा का दमन थोड़े ही करना पड़ता है। सांप दिख गया कि आप बच जाते हैं बिना दमन किए! सांप जा रहा है, और आप उस रास्ते से गुजरते थे, तो जब आपको सांप दिखता है कि जहर सामने है और आप बगल में हट जाते हैं, तो आपको कोई सप्रेशन थोड़े ही करना पड़ता है कि सांप पर से निकलने की बड़ी इच्छा थी, उसे दबाकर बगल में हट जाए। कोई दमन नहीं करना पड़ता है। सिर्फ अंडरस्टैंडिंग कि सांप है, छलांग लग जाती है, आप बच जाते हैं, सांप निकल जाता है। कभी पीछे यह आकांक्षा नहीं छूट जाती कि सांप के ऊपर से निकलना है।

जब क्रोध भी सांप की तरह दिखाई पड़ने लगता है, अनुभव में आने लगता है, तो दमन नहीं करना पड़ता है। आप बस बचकर निकल जाते हैं। क्रोध एक तरफ हो जाता है, आप दूसरी तरफ हो जाते हैं। और जब क्रोध से आप बहुत बार बचकर निकल जाते हैं और दमन नहीं होता, तब क्रोध इकट्ठा नहीं होता है; क्योंकि क्षमता धीरे-धीरे क्षीण होती चली जाती है। एक क्षण आता है कि आदमी क्रोध के बिलकुल बाहर हो जाता है। यह भी हो सकता है, वैसा आदमी भी कभी क्रोध का उपयोग करे, लेकिन तब वह निपट एक्टिंग होगी, बिलकुल अभिनय होगा। उसमें इससे ज्यादा कुछ भी नहीं होने वाला है।

मेरा कहना यह है कि विवेक विकसित करने की बात है एक-एक चीज के संबंध में। लंबी प्रक्रिया है। किसी को बंधे-बंधाए नियम दे देना बहुत सरल है कि झूठ मत बोलो, सत्य बोलना धर्म है। पर नियम देने से कुछ होता है? नियम देने से कुछ भी नहीं होता। पुराना अनुशासन गया, आखिरी सांसें गिन रहा है। और पुराने मस्तिष्क उस अनुशासन को जबरदस्ती रोकने की कोशिश कर रहे हैं। उन्हें डर लग रहा है कि अगर अनुशासन चला गया, तो क्या होगा? क्योंकि उनका अनुभव यह है कि अनुशासन के रहते भी आदमी अच्छा नहीं था, और अगर अनुशासन चला जाए तो मुश्किल हो जाएगी। उनका अनुभव यह है कि अनुशासन था, तो भी आदमी अच्छा नहीं था तो अनुशासन नहीं रहेगा, तो आदमी का क्या होगा? उन्हें पता नहीं है कि आदमी के बुरे होने में उनके अनुशासन का नब्बे प्रतिशत हाथ था। गलत अनुशासन था--अज्ञानपूर्ण था, थोपा हुआ था, जबरदस्ती का था।

एक नया अनुशासन पैदा करना पड़ेगा। और वह अनुशासन ऐसा नहीं होगा कि बंधे हुए नियम दे दें। ऐसा होगा कि उसके विवेक को बढ़ाने के मौके दे, और उसके विवेक को बढ़ने दें, और अपने अनुभव बता दें जीवन के, और हट जाएं रास्ते से बच्चों के। एकदम रास्ते पर खड़े न रहें उनके। सब चीजों में उनको बांध ने की, जंजीरों में कसने की कोशिश न करें। वे जंजीरें तोड़ने को उत्सुक हो गए हैं। अब जंजीरें बर्दाश्त न करेंगे। अगर भगवान भी

जंजीर मालूम पड़ेगा तो टूटेगा, बच नहीं सकता। अब तोड़ने की भी जंजीर बचेगी नहीं, क्योंकि जंजीर के खिलाफ मामला खड़ा हो गया है। अब पूरा जाना होगा, जंजीर बचनी नहीं चाहिए।

लेकिन मनुष्य चेतना कि विकास का क्रम है। एक क्रम था जब चेतना इतनी विकसित नहीं थी, नियम थोपे गए थे, सिवाय इसके कोई उपाय नहीं था। अब नियम थोपने की जरूरत नहीं रह गयी है। अब नियम बाधा बन गए हैं। अब हमें समझ, अंडरस्टैंडिंग ही बढ़ाने की दिशा में श्रम करना पड़ेगा। तो मैं कहना चाहता हूं कि समझ, विवेक, एकमात्र अनुशासन है। परी प्रक्रिया बदलनी पड़ेगी: क्योंकि विवेक को जगाने की प्रक्रिया बिलकुल अलग होगी। नियम थोपने की प्रक्रिया बिलकुल अलग थी, बायोलाजिकली अपोजिट है, दोनों बिलकुल विरोधी हैं। खतरे इसमें उठाने पड़ेंगे। खतरे पुरानी प्रक्रिया में भी बहुत उठाए। सबसे बड़ा खतरा यह उठाया कि आदमी जड़ हो गया। जिसने नियम माना, वह जड़ हो गया, जिसने नियम नहीं माना, वह बर्बाद हो गया। वे दोनों विकल्प बुरे थे। अगर किसी ने पुराना अनुशासन मान लिया तो वह बिलकुल ईडियाटिक हो गया, जड़ हो गया। उसकी बुद्धि खो गयी। और जिसने बुद्धि को बचाने की कोशिश की, उसे नियम तोड़ने पड़े। वह बर्बाद हो गया, वह अपराधी हो गया, वह प्राब्लम बन गया, वह समस्या बन गया, वह समस्या बन गया। दोनों विकास बुरे सिद्ध होते हुए। जिसने नियम माना वह खराब हुआ; क्योंकि नियम में उसको जड़ बना दिया। गुलाम बना दिया। और जिसने नियम तोड़ा, वह स्वच्छंद हो गया। नियम से अच्छापन नहीं आया।

यह हमारी आदमियत आज इसी तरह की है। खतरे इसमें हैं, इसमें खतरे बिलकुल दूसरी तरह के होंगे,जो मैं कह रहा हूं। इसमें खतरे वे नहीं हैं जो पिछली परंपरा में थे, इसमें खतरा सिर्फ एक ही है कि थोड़ी देर लगेगी और धैर्य भी रखना पड़ेगा। बस, और कुछ भी नहीं। धैर्य की बहुत कमी है। मां बाप चाहते हैं कि बेटा आज ही बूढ़ा हो जाए। कैसी पागलपन की बातें हैं! बूढ़े का जिंदगी भर का अनुभव बेटे पर आज कैसे थोपा जा सकता है? बेटा बूढ़ा होते-होते बूढ़ा हो जाता है। वक्त लगेगा, समय लगेगा। और जल्दी में नुकसान हो सकता है। जल्दी मग यह हो सकता है कि उसमें विकास की प्रक्रिया ही ठप्प हो जाए, और वह हमेशा के लिए बच्चा हो जाए। या कभी भी क्रोध मेच्योर न हो सके।

वक्त लगेगा, बच्चे के साथ थोड़ी समझ से काम लेना पड़ेगा, बहुत धैर्य रखना पड़ेगा। आनेवाली पीढ़ियों के साथ अगर धैर्य नहीं रखा गया, तो खतरा दुनिया के सामने है। बहुत धैर्य की जरूरत है। बड़ी शक्ति जब प्रकट होती है तो धैर्य की जरूरत पड़ती है। बड़ी शक्ति प्रकट हो रही है पृथ्वी पर। ऐसी कभी भी प्रकट नहीं हुई। मनुष्य चेतना ऐसी जगह आ गयी है, जहां से छलांग लगेगी, जहां से बिलकुल नए मनुष्य का जन्म होगा। तो ऐसी जगह पर बड़े संकट का, क्राइसिस का मौका भी होता है। मौका खड़ा है। अगर पुराने मन ने जिद्द की कि हम पुराने नियम जारी रखेंगे, तो भी छलांग लगेगी, लेकिन तब सब टूटकर छलांग लगेगी। सब नष्ट हो जाएगा। उसमें अच्छा भी जाएगा, बुरा भी जाएगा। लेकिन अगर पुराने

मन ने थोड़ी समझ जाहिर की और नयी संभावना प्रकट हो रही है, नया जो मनुष्य प्रकट हो रहा है उसको समझने की कोशिश की, तो बहुत फर्क पड़ जाएगा।

सोरवान विश्वविद्यालय में, फ्रांस में बहुत उपद्रव चला। अध्यापाकों ने बहुत समझाने की कोशिश की। अध्यापकों ने जो समझाया, उसके उत्तर में लड़कों ने विश्वविद्यालय की सारी दीवारों पर एक वाक्य लिख दिया बड़े-बड़े अक्षरों में, प्रोफेसर, यू आर ओल्ड। आपको हम एक ही उत्तर देना चाहते हैं कि अध्यापाक गण, आप बूढे हो गए हैं और जो नया हो रहा है उसको आप नहीं समझ पा रहे हैं। आप समझाने की कोशिश फिजूल कर रहे हैं।

उत्तर बहुत सांकेतिक है, अर्थपूर्ण है। सारी व्यवस्था पुरानी हो गयी है, सब ओल्ड हो गया है, और सब जरा जीर्ण हो गया है, और पांच हजार वर्ष के अनुभव से असफल हो गया, सफल भी नहीं। तो मैं जो कहना चाहता हूं वह यह कि अनुशासन एक तरह का होगा। होना चाहिए, वह भीतर से आए। हम युवकों को, बच्चों को आनेवाली पीढ़ी को, भीतर से तैयार कर सकें कि वे अनुशासन अनुभव करें। बाहर से तैयारी अब नहीं हो सकती।

आप मुझे सुनना चाहते हैं तो चुप बैठे हैं। यह भीतर से आया हुआ अनुशासन है। इसमें कोई ऊपर से थोपने का सवाल नहीं है। एक बोलने वाला चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है कि चुप रहे, शांत रहो मेरी बात सुनो कि मैं क्या कह रहा हूं और बात चीज चल रही है और कोई सुनने को राजी नहीं है, और बात चीज होती जा रही है। वह अनुशासन ऊपर से थोपा जा रहा है। ठीक है, अगर आप बात चीज करते चले जा रहे हैं और मुझे नहीं सुनना है, तो आपको समझाने की जरूरत नहीं है, मेरे समझने की जरूरत है कि मैं बंद करूं और विदा हो जाऊं। आपको समझाने का क्या सवाल है? बात खत्म हो गयी है। मुझे जानना चाहिए कि लोग सुनने को राजी नहीं है, मुझे विदा हो जाना चाहिए।

तो वह मुनि, वह समझाने वाला विदा होना नहीं चाहता। वह कह रहा है, चुप रहो, डंडे के बल पर चुप रहो! नर्क चले जाओगे अगर चुप नहीं रहोगे। वह आपको चुप करने की कोशिश करते हैं। खुद चुप हो जाए, नहीं सुनना है लोगों को, विदा हो जाए। लोगों को सुनना होगा, चुप होंगे; नहीं सुनना होगा तो चुप नहीं होंगे। उन्हें सुनना होगा वो पकड़कर ले आएंगे कि हम सुनने को राजी हैं। नहीं सुनेंगे, बात खत्म हो गयी। सुनाना जरूरी भी क्या है? सुनने के लिए ही कोई तैयार न हो, तो सुनाना जरूरी कहां है?

अगर अब तक यही था। यह समझाया जा रहा है कि जब कोई बोलता है, तो चुप रहो, चाहे वह कुछ भी बोल रहा हो। वह अनर्गल बोल रहा हो, तो भी चुप रहो। वह अब नहीं कहेगा, अब नहीं बोल सकता है वह, बोलनेवाले को जानना पड़ेगा कि बोलनेवाली बात होगी, तो ही सुनी जा सकती है। क्योंकि तब एक भीतरी अनुशासन पैदा होता है। जिसे सुनना है, वह अपनी श्वास तक रोक लेता है कि कहीं मैं चूक न जाऊं। यह एक भीतरी अनुशासन है। अब बाहरी अनुशासन नहीं चल सकता है।जीवन की सारी व्यवस्था में नहीं चल सकता है।

बाप बेटे से कह रहा है कि मैं तुम्हारा पिता हूं, इसलिए आदर करो। यह कोई तर्क का नियम थोड़े ही है। तुम पिता होने की जिद्द न करो। आदर आना होगा, आ जाएगा: नहीं आना होगा, नहीं आएगा। और मैं मानता हूं कि सिद्ध कर सके कोई कि मैं पिता हूं, तो आदर आता है। वह एक भीतरी अनुशासन है, उसको कोई रोक नहीं सकता है। यह असंभव है कि पिता के प्रति आदर न हो। लेकिन सिर्फ जन्म दाता पिता नहीं है। प्रोडयूसर, उत्पादक है, पिता नहीं है। और उत्पादक कह रहा है कि मैं पिता हूं। इस तरह अनुशासन नहीं आनेवाला है। क्योंकि लड़के समझ रहे हैं, सिर्फ तुमने पदा कर दिया है, बस बात खत्म हो गयी। और पैदा कर दिया है तो कोई बहुत समझपूर्वक पैदा कर दिया है, ऐसा भी मालूम नहीं होता है। आकस्मिक घटना है। तुमने सोचा भी था? तुमने मुझे निमंत्रण दिया था? ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता। अतिथि हूं आकस्मिक हूं। तुमने झेल लिया है, दूसरी बात है। ठीक है, साथ हो गया है। पिता होने के लिए कुछ और करना पड़ेगा। पैदा करना काही नहीं है। और मैं मानता हूं, कभी काफी नहीं था। पिता होना सिद्ध करना पड़ेगा। पिता होना बड़ी डेलीकेट, बड़ी नाजुक बात है। मां होने से ज्यादा नाजुक बात है। क्योंकि मां होना बहुत कुछ प्राकृतिक है। पिता होना बिलकुल ही अप्राकृतिक है। पिता होना बिलकुल सामाजिक घटना है। पिता के बिना काम चल सकता है। पिता कोई अनिवार्य बात नहीं है। पिता मनुष्य की संस्कृति की खोज है। मां तो होती ही, पिता के बिना हो सकती है। पिता का पता लगाना मुश्किल हो सकता है।

यह जानकर आप हैरान होंगे कि अंकल, चाचा पुराना शब्द है, फादर, पिता बाद का शब्द है। तीन चार हजार वर्ष तक पिता का कोई पता नहीं चलता था। स्त्रियां थी और पुरुष थे और किन में किन में संबंध होता था, कुछ पक्का नहीं था। पिता कौन है, यह पता नहीं चल सकता था। सब अंकल थे। जो एक उम्र के थे, वे सब अंकल थे। उनमें कोई पिता होगा। पिता तो बाद में आया है। जब थिर हो गयी बात, और पति पत्नी सुनिश्चित हो गए और एक घर बस गया और पति पत्नी तय हो गए। वह उनके ही बीच संबंध होता है, और किसी के बीच संबंध नहीं होता है, तक पिता आया। पिता नयी घटना है। और डर है कि विदा न हो जाए। इसका पूरा डर है। क्योंकि पिता की संस्था बहुत योग्य सिद्ध नहीं हुई है, इसलिए विदा हो सकती है। रूस में या नए समाजों में चिंता हो रही है इस बात की कि पिता को विदा किया जो; क्योंकि संस्था कोई बहुत योग्य साबित नहीं हुई। खतरा इस बात का है कि पिता को बदला जा सके।एक नया इंतजाम हो सकता है। पिता सिद्ध करना पड़ेगा।

गुरु कह रहे हैं कि सम्मान दो, क्योंकि मैं गुरु हूं। यह बात कहना ही गलत है। जो गुरु यह कहे कि मुझे सम्मान दो, तो जानना चाहिए कि वह गुरु होने के योग्य न रहा। यह कोई कहने की बात है? यह मानना पड़ेगा? उसे गुरु होना सिद्ध करना चाहिए। वह सिद्ध कर दे, और विद्यार्थी पर नहीं छोड़ना चाहिए कि वह शिष्य होना सिद्ध करे। क्योंकि शिष्य अभी-अभी आया है, नया-नया है। उस पर नहीं छोड़ा जा सकता है यह मामला। वह अभी दुनिया शुरू कर रहा है। यह मामला, यह जिम्मेदारी, यह रिस्पासिबिलिटी उसकी है जो सिद्ध करे कि मैं

गुरु हूं। तो, मेरा मानना है कि गुरु अगर सिद्ध कर दे कि वह गुरु है, तो शिष्य में एक भीतरी डिसाइपलशिप, जिसे कहना नहीं पड़ता है, एक भीतरी शिष्यत्व पैदा होना शुरू होता है, जिसमें सम्मान है, जिसमें अपमान असंभव है। क्योंकि जिससे हमने कुछ भी पाया है उसका अपमान बिलकुल असंभव है।

लेकिन जिससे कुछ भी न पाया हो, जो सिर्फ तनख्वाह पा रहा हो, और मशीन की तरह आकर कुछ बोल जाता हो, और जिससे हमारा कोई आंतरिक संबंध न हो, कोई भीतरी नाता न बनता होः उसको हम कुलपति कहते हैं। विश्वविद्यालय के प्रधान को हम कुलपति कहते हैं। कुलपति का मतलब है घर का बड़ा। और उसको तो लड़कों के नाम तक भी पता नहीं हैं कि कौन लड़का पढ़ता है, कौन नहीं पढ़ता है। फैक्ट्री है युनिवर्सिटी कुल। कोई घर तो नहीं है, तो वाइस चांसलर का मैनेजिंग डायरेक्टर या ऐसा ही कोई नाम देना चाहिए। एक फैफ्ट्री है युनिवर्सिटी जहां हम धंधा चला रहे हैं पड़ने का। एक फैक्ट्री है, वहां शिफ्टिंग चल रही है, सुबह, दोपहर, सांझ फैफ्ट्री की शिफ्ट जैसे बदलती है, जैसे काम चल रहा है वहां, नौकरी पेशा लोगों का।

कुलपति पुराना शब्द है, बड़ा अर्थपूर्ण रहा है। घर के बड़े का नाम था, जो कुल के पिता कि तरह था। वह अपने बच्चों के साथ जी रहा था। उनकी चिंता कर रहा था--बीमारी की, स्वास्थ्य की, समझ की उनके ज्ञान की, सब तरह की चिंता करता था। वह उनके लिए फिकर करता था जो रात में बीमार पड़ते थे, उनकी खाट पर आकर रात भर बैठा भी रहता था। वह कुलपति था, तो समझ में आता था। उसके प्रति आदर रहा होगा। वह अनिवार्य है। उसको माना नहीं गया होगा। अब हम उसे कुलपति कहते हैं जो नाम से कुलपति है, लेकिन जिसका कुलपति होने से कुल जमा इतना संबंध है कि यह राजनीतिक तिकड़म में जुट गया है और चुनाव जीत गया है।

तो, कुलपति होना कोई चुनाव से हो सकता है? ऐसा तो कुल पिता के लिए भी हम कर सकते हैं। एक लड़के के लिए चार पिता खड़े हो जाए कि हम चुनाव लड़ते हैं, जो जीत जाए, वह तुम्हारा बाप है। फिर तुम आदर देना उसको बाप का। कैसे संभव होगा यह? कुलपति चुनाव से नहीं आया था। एक कुल था, एक घर था, सीखनेवालों का एक परिवार था। उस परिवार में सर्वाधिक वृद्ध था। सबसे ज्यादा सीखा था, सबसे ज्यादा सिखाया था, सबसे ज्यादा प्रेमपूर्ण था, पिता होने के योग्य था--वह पिता बन गया। यह बिलकुल सहज घटना थी। उसके प्रति आदर था, अब उस कुलपति का आदर आज का कुलपति मांगता है तो सब बेहूदगी की बातें हो जाती हैं। कोई नहीं आदर देगा। पत्थर पड़ेंगे। चुनाव करनेवाले पर पत्थर ही पड़ सकते हैं। और वह मांग करता है कि चूंकि मैं कुलपति हूं, इसलिए मुझे आदर उतना मिलना चाहिए, जितना कुलपति को, गुरु को मिलता था। यह बेहूदी बातें हैं, एब्सर्ड हैं, अब इनकी कोई संगति नहीं है।

आनेवाले भविष्य में हमें समझाना पड़ेगा कि कुलपति सिद्ध करो, गुरु सिद्ध करो। तो गुरु सिद्ध करना साधारण बात नहीं है, बहुत असाधारण घटना है। इतना आंतरिक संबंध बनाना,

इतना प्रीतिपूर्ण संबंध बनाना, इतना प्रेम देना कि दूसरा अनुगत हो जाए, दूसरा झुक जाए, झुक जाना पड़े। उसे खयाल भी कभी न आए कि वह झुका, क्योंकि जिसको खयाल आ जाए झुकने का, वह अकड़ जाएगा। क्योंकि कोई झुकना नहीं चाहता। क्यों कोई झुकना चाहे? और जिससे कहा गया कि झुको, उसके मन में शक्ति पैदा हो जाएगी। झुकने के प्रति दुश्मनी पैदा हो जाएगी। अगर झुकेगा तो भी मन में घृणा सोच लेगा। नहीं झुकेगा तो अहंकार और दंभ में उतर जाएगा।

नहीं, यह कहने की बात नहीं है कि कोई झुके। तो जब आदमी इस योग्य होता है कि किसी को झुकने का खयाल आ जाता है, अनजाने कोई झुक जाता है: तब एक और बात है, एक भीतरी अनुशासन की बात है। तो शिष्यत्व ऊपर से नहीं थोपना है। आनेवाले जगत में भीतर से लाना है।

और बहुत से प्रश्न हैं। कुछ मित्रों का खयाल है कि सभी के बहुत से प्रश्न हैं। तो, मैं जो कह रहा हूं, इसे कैसे अधिकतम लोगों तक पहुंचाया जाए? क्या रास्ता है? क्या मार्ग है?

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा।

पुराने रास्ते भी बातों पर पहुंचा के रहे हैं। वे सब गलत साबित हुए हैं। और अक्सर यह होता है कि नयी बात को भी अगर हम पहुंचाना चाहें, तो पुराने ही रास्तों से पहुंचाना शुरू करते हैं। पुराना रास्ता फिर नयी बात को भी पुराना कर देता है। पुराने रास्ते यह रहे हैं कि संगठन बनाओ, आर्गेनाइज करो। जो एक मत को मानते हैं, वे इकट्ठे हो जाए। वे चारों तरफ एक दीवाल खींच लें, दूसरों से अलग हो जाए भिन्न हो जाए। यह रास्ता पुराने विचार को फैलाने का था। इससे विचार कुछ फैले, लेकिन इससे मनुष्य खंडित होती है। और मनुष्य का खंडित हो जाना किसी भी विचार के फैलने से ज्यादा मंहगा है। कोई फैले या न फैले, यह उतनी बड़ी महत्व की बात नहीं है, लेकिन आदमी खंडों में टूट जाए, यह बहुत खतरनाक है।फिर जो लोग संगठित हो जाते हैं, आर्गेनाइज्ड हो जाते हैं, संप्रदाय बना लेते हैं, समुदाय बना लेते हैं, संस्था बना लेते हैं, वे धीरे-धीरे विचार करना बंद देते हैं, क्योंकि दस आदमियों को अगर इकट्ठा होकर सहमत होना हो, तो विचार करना मुश्किल है।

विचार असहमति लाता है। जितना ही विचार करेंगे, उतना ही दूसरे से राजी होना एकदम आसान नहीं रह जाएगा। सिर्फ बुद्धुओं की भीड़ इकट्ठी की जा सकती है, बुद्धिमानों की भीड़ इकट्ठी करना मुश्किल बात है।

तो जब भी भीड़ इकट्ठी की जाती है, तो भीड़ बुद्धू हो जाती है; क्योंकि इकट्ठे होने में ही सब खत्म हो जाता है। व्यक्ति टूट जाता है फौरन। जैसे ही एक आदमी ने कहा, मैं हिंदू हूं, वह आदमी व्यक्ति की तरह खत्म हो गया। हिंदू होने का जो अर्थ है, वह उसने स्वीकार कर लिया। अब वह व्यक्ति नहीं रहा, हिंदू भीड़ का एक हिस्सा हो गया। जिसने कहा, मैं मुसलमान हूं, उसने कहा, मैं अपने को खोता हूं। तुम्हारी बड़ी भीड़ का जो संकेत है मुसलमानों में, स्वीकार करता हूं और जो मुसलमान होने का अर्थ है वह स्वीकार करता हूं। मुसलमान होने का सब मुझे संदेह नहीं है, अब मुझे विचार नहीं करना है। मैं समझ गया।

जो ठीक था, वह मैंने पा लिया। बात खत्म होती है, मैं सम्मिलित होता हूं, मैं स्वीकार कर लेता हूं। जो आदमी मुसलमान बन गया, वह आदमी आदमी नहीं रह गया, सिर्फ एक संस्था का सदस्य हो गया। उसने अपने को खो दिया खत्म कर लिया।

तो, मेरी बात कोई संस्था। कोई संगठन बनाकर नहीं पहुंचानी है। मुश्किल मामला है फिर पहुंचाना बहुत मुश्किल है। संस्था न हो, संगठन न हो, तो बात कैसे पहुंचती है! तो संस्था और संगठन का मैं बिलकुल दुश्मन ही हूं, एकदम दुश्मन हूं। बात पहुंचे या न पहुंचे, इसका मूल्य नहीं है। संस्था नहीं बननी है। संस्था बनी कि उससे स्वार्थ आए। स्वार्थ के पद आए, प्रतिष्ठा आयी, संघर्ष आया, चुनाव आया, पालिटिक्स आयी। कोई संस्था बिना पालिटिक्स के नहीं होती। व्यक्ति हो सकता है बिना राजनीति के।

संगठन बिना राजनीति के कभी नहीं हो सकता।

संगठन में राजनीति होगी ही। राजनीति वह नहीं कि जो राज्य के लोग करते हैं। राजनीति वह है, जो कोई समूह, पद और प्रतिष्ठा के लिए करता है। भीतरी राजनीति होती है। अगर पांच सौ साधु मिलेंगे, तो भीतरी राजनीति शुरू हो जाएगी कौन आचार्य बने। कौन उपाचार्य हो, फिर कब आचार्य मरे और कब वह पद मिले। वह राजनीति उतनी ही है सख्त, जितनी की राष्ट्रपति की होगी, प्रधानमंत्री की होगी। इसमें कोई फर्क नहीं है। यह तो एक छोटा वृत्त है, जिसके भीतर खेल चलेगा। जहां संगठन हुआ, वहां राजनीति होगी। इसलिए मैं कहता हूं, संगठन मात्र राजनीतिक होते हैं। कोई संगठन धार्मिक हो ही नहीं सकता। धार्मिक संगठन भी हुआ तो वह फौरन राजनीतिक हो जाएगा। नाम धर्म का रहेगा, भीतर राजनीति शुरू हो जाएगी। संगठन नहीं बना है कोई भी इसलिए बड़ा दुष्कर काम है। बड़ा कठिन काम है, व्यक्ति की हैसियत से क्या हम कर सकते हैं?

जो बात ठीक लगती है, और वह भी इसलिए नहीं कि मैं कहता हूं, अगर मैं कहता हूं, और आपको ठीक लग जाती है, और आप नहीं सोचते तो आप खतरनाक हैं। आप नुकसान पहुंचाएंगे। क्योंकि तब आप तोते की तरह दोहराएंगे, जो कि सदा से हो रहा है। महावीर ने क्या कहा है, उनके मुनि उनको दोहराए चले जा रहे हैं। उनमें से एक ने भी उसे जानने की फिकर नहीं कि है कि वह क्या है। क्योंकि वे महावीर की आलोचना करने में ही डर गए हैं, असमर्थ हो गये हैं। डर गए हैं कि महावीर की आलोचना तो हो ही हनीं सकती, महावीर तो सर्वज्ञ है जो कह दिया, वह ठीक है। वह इसलिए ठीक नहीं है कि वास्तव में ठीक है, वह इसलिए ठीक है कि महावीर ने कहा है, बुद्ध ने कहा, मुहम्मद ने कहा है या कि कृष्ण ने कहा है। वह ठीक होकर बैठ गया है, अब उसका प्रचार करना है। ऐसा आदमी विचारशील नहीं है। और ऐसा आदमी विचार तो कम पहुंचाता है, अविचार ज्यादा पैदा करता है। वह जिसको भी सिखा-पढ़ा कर राजी कर लेगा, उसने एक आदमी को और अविचार में ढाल दिया! एक आदमी की और बुद्धि नष्ट की।

मैं जो कह रहा हूं, कोई वैसा ही उसे सब तक पहुंचा देना है, यह सवाल नहीं है। कोई जरूरत ही क्या है? एक आदमी को यह ठीक लग रहा है कह रहा है। वह सभी को ठीक

लगे, यह अनिवार्य कहां है? इसकी मांग क्यों होनी चाहिए कि वह भी सभी को ठीक लगे? जानकर आप हैरान होंगे कि जिस आदमी को यह फिकर होती है कि जो मुझे ठीक लग रहा है, वह सब को ठीक लगना चाहिए, उस आदमी को भीतरी रूप से शक होता है कि जो ठीक लग रहा है, वह ठीक है या नहीं। वह दूसरों को समझाकर खुद कन्विंस हो जाना चाहता है कि--नहीं जरूर ठीक है। जब इतने लोगों को ठीक लगने लगता है, तो गलत नहीं हो सकता है। इसलिए आदमी अनुयायी खोजता है।

फिर आदमी को अपने सत्य पर कोई श्रद्धा नहीं है, वह अनुयायी खोजता है। जितने अनुयायी बढ़ते जाते हैं, उतनी उसकी भी आस्था पक्की होती जाती है कि जब इतने लोगों को ठीक लग रहा है, तो बात ठीक होनी चाहिए। उसका करेज, उसका साहस बढ़ता चला जाता है।

क्योंकि मैं तो अकेले आदमी की तरह ही कहना चाहता हूं। जो मुझे ठीक लग रहा है, वह मुझे ठीक ही लग रहा है। उसमें आप मेरे पास आते हैं या नहीं आते हैं, इससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। अकेले जंगल में बैठूंगा, तो वह उतना ही ठीक है, मेरे पास करोड़ आदमी इकट्ठे हो जाए, तो भी उतना ही ठीक है। उसमें रत्ती भर फर्क भीड़ से नहीं पड़ने का। इसलिए भीड़ की कोई साइकोलाजिकल डिमांड नहीं है, कोई मनोवैज्ञानिक कभी नहीं है भीतर मेरे मन में, कि उसको भीड़ से पूरा कर लेना है। वैसे यह भीड़ इकट्ठा करने की कोई बात नहीं है। और आप भी भीड़ इकट्ठा करने के प्रयोजन को मत लेना अपने मन में। बात जो ठीक लगती है, उसे दूसरे से निवेदन कर देना। और निवेदन भी इसलिए नहीं कर देना है कि वह कन्विंस हो जाए, राजी हो जाए। निवेदन इसलिए कर देना है कि यह हमारे माननीय होने का हिस्सा है कि जो मुझे ठीक लगे, वह मेरे साथ न जाए, उसे मैं बांट दूं। हो सकता है, वह किसी के काम आ जाए। हो सकता है किसी के काम न आए। उसे मैं शेयर कर लूं, बस। उसमें दूसरे को भी साझीदार बना लूं। मुझे ठीक लगी है एक बात, उससे मुझे आनंद मिला है। आप भी मेरे पड़ोस से गुजर रहे हैं, मैं आपसे कह दूं कि एक बात से मुझे आनंद मिला है। हो सकता है, आपको मिल जाए। सोचना, बात खत्म हो गयी। इससे ज्यादा कुछ लेना-देना नहीं है।

क्योंकि जैसे ही हमने बात की और शर्त रखी कि हमारी बात अगर ठीक लगे, तो हमारे संगठन में आओ। हमारी बात ठीक लगे, तो यह करो और यह मत करो। हमें बात से कम संबंध रह गया है। बात के पीछे कुछ और चीजों, पर स्वार्थों से हमारा ज्यादा संबंध हो गया है उनको बिलकुल नहीं लेना है। आज एक ईसाई दूसरे को ईसाई बना रहा है। यह नहीं है कि उसे ईसा से कोई आनंद मिल गया है, जो दूसरे को बांटने के लिए उत्सुक है। प्रयोजन बिलकुल दूसरे हैं। उसे कोई आनंद दिखाई नहीं पड़ रहा है, और वह दूसरे को ईसाई बनाए चला जा रहा है। प्रयोजन बहुत दूसरे हैं अब--भीड़ बढ़ाने के, शक्ति बढ़ाने के संगठन बढ़ने के, राजनीति के, दुनिया का पालिटिक्स के पीछे के हिस्से हैं। नहीं, किसी को अगर ईसा से आनंद मिला हो, तो उसे हम है कि दूसरे से कह दे कि उसे आनंद मिला है। लेकिन ईसाई

बनाने की फिकर में क्यों पड़े? ईसाई बनाने से क्या संबंध है? ईसा से कोई आनंद बिना ईसाई बना लिया जा सकता है। ईसाई बनाने का क्या संबंध है?

इसलिए न तो कोई संप्रदाय खड़ा करना है, न कोई मत, न लोगों की भीड़। मेरी बात से अगर आपको आनंद का अनुभव होता हो, और ऐसा लगता है कि उसकी खबर मैं फैला दूं, वह किसी को शायद काम पड़ जाए। बेकार होगी तो काम नहीं पड़ेगी, बात खत्म हो जाएगी, हवा में खो जाएगी। काम पड़ेगी तो चल पड़ेगी लेकिन अनाम--न उसका नाम होगा बात का, न कोई संगठन होगा, न पीछे कोई बंधने का सवाल होगा, न हमारी कोई मांग होगी, न कोई सवाल होगा, न कोई संबंध होगा। कोई अनुयायी इकट्ठे नहीं करने हैं।

कैसे एक-एक बात को पहुंचाना है--तो अपने-अपने तईं सोचना चाहिए मैं क्या कर सकता हूं? अगर मुझे कोई बात आनंदपूर्ण लगी तो मैं क्या कर सकता हूं?

पहला तो काम यह है कि उसे मैं जीना शुरू करूं; क्योंकि जिनकी सुगंधि उसे पहुंचाएगी। मेरे कहने से वह नहीं पहुंच जाएगी। मेरे जीने की सुगंधि उसे पहुंचाएगी।

अगर आप उसे जीए, तो आपकी पत्नी पूछेगी कि क्या होगा, तुम आदमी दूसरे हो गए हो! तुम्हारा क्रोध कुछ और हो गया, तुम्हारा प्रेम कुछ हो गया। तुम पति कुछ और हो गए, तुम पिता कुछ और हो गए। हो क्या गया है? जब एक व्यक्ति में थोड़े से भी फर्क आते हैं, तो उसके चारों तरफ पूछ शुरू हो जाती है कि हो क्या गया है। और अगर वह फर्क आनंदपूर्ण है, तो दूसरों में भी प्यास जगती है कि क्या हो गया है।

तो निवेदन देना है, किसी पर थोप नहीं देना है। निवेदन कर देना है--यह कर रहा हूं, यह सोच रहा हूं। इससे कुछ हो रहा है। तुम भी सोचो, शायद कुछ हो सके। ठीक लगता हो, तो पहुंचा देना है। हो सकता है कई बातें आप न समझा सकते हो और ठीक लगती हों। क्योंकि समझाना अलग बात है, ठीक लगना बिलकुल अलग बात है। जरूरी नहीं है कि जिसको ठीक लग जाए, वह समझा भी सके और यह भी जरूरी नहीं है कि जो समझा सकता हो, उसको कुछ ठीक लग गया हो। यह भी कोई जरूरी नहीं है। ये दोनों बातें अलग हैं। कभी एक आदमी में भी हो सकती हैं, अक्सर नहीं होती हैं।

बुद्ध से किसी ने पूछा था कि आपके साथ दस हजार भिक्षु हैं, इनमें से कितने लोगों को वह ज्ञान उपलब्ध हो गया है, जो आपको हुआ है? बुद्ध ने कहा, बहुतों को। पर उन्होंने कहा, वे पहचान में नहीं आते। तो बुद्ध ने कहा, फर्क इतना है कि मैं बोलता हूं, इसलिए तुम पहचान लेते हो, वे चुप हैं, इसलिए तुम नहीं पहचानते। मैं भी चुप होता, तुम मुझे भी नहीं पहचानते।

बहुतों को हुआ है। पृथ्वी पर बहुत लोगों ने सत्य जाना है। लेकिन नाम हम गिनाते हैं, उतने ही नहीं हैं, वह तो बहुत कम संख्या है। वह तो सिर्फ उन लोगों की संख्या है, जिन्होंने सत्य जाना है और साथ में टीचर होने की जिनकी संभावना है। साथ में जो शिक्षक भी हो सकते थे, जो कह भी सकते थे, संवादित भी कर सकते थे, समझा सकते थे।

लेकिन जितने हम नाम जानते हैं, उतने सबको हुआ भी नहीं है। कुछ तो उनमें ऐसे ही थे, जो सिर्फ समझा सकते थे। जिनको हुआ कुछ भी नहीं है। तो हमारे बड़े नामों में सब सच भी नहीं है। और हमारे बहुत छोटे नामों में जो खो गए हैं, बहुत सच हैं। उनका कोई पता नहीं चलता है। दुनिया मग सत्य जानने वाले सभी लोगों का पता नहीं चलता है, क्योंकि हमें पता तो बोलने से चलता है, और कोई उपाय नहीं है।

यह जरूरी नहीं है कि आपको हो जाए खयाल, तो आप समझा भी सकें। बहुत बार ऐसा होता है कि गूंगे का गुड़ हो जाता है। लगता है कि कुछ मुझे पता है, लेकिन कैसे कहूं? और जब कही जाती है और दूसरा तर्क उठता है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है कि कैसे समझाऊं उसको? पीड़ा होती है, लेकिन समझाना बहुत मुश्किल होत है। तो मेरे टेप हैं, ?वह आप सुना दे सकते हैं; मेरी किताबें हैं, वह पहुंचा दे सकते हैं। लेकिन इतना ही ध्यान रखकर कि वह सुना देना है, आग्रह कोई भी नहीं है। सुनाकर चुपचाप वापस लौट आना है। यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा। यह पूछने में भी आग्रह शुरू होता है। जानने का मन होता है हमारा कि किसी से हम कहें, तो बाद में पूछें कि कैसा लगा? इतना भी आग्रह गलत है। बात खत्म हो गयी है। उसे कुछ लगा होगा, वह कहेगा उसके भीतर से आने दो। नहीं लगा होना, बात समाप्त हो गयी है। यह पूछना क्यों है? हो सकता है यह पूछने में उसे कहना पड़े कि अच्छा लगा।

हम इतने शिष्टाचार से भर गए हैं कि असत्य भी शिष्टाचार बना गया है। और आज अधिक शिष्टाचार असत्य ही है। जब एक आदमी पूछता है, कहिए, कैसे हैं? हम कहते हैं, बहुत अच्छे हैं। उसको तो धोखा होता ही है, सुनकर हमको भी धोखा होता है। शिष्टाचार भर का हिस्सा है। वह भी जानता है कि कौन अच्छा है। वह भी जानता है।अगर शिष्ट हो तो पूछना ही नहीं चाहिए कि कैसे हैं। क्योंकि वैसे आदमी को क्यों हिचक में डालना है, अगर वह ठीक न हो तो कहना मुश्किल पड़ता है।

जापान में छोटे-छोटे बच्चों को हम सिखाते हैं, किसी की तनखाह कभी मत पूछना, अशिष्टता है। क्योंकि हो सकता है, तनखाह बहुत कम हो। और तुमने पूछ लिया कि कितनी तनखाह है, तो तुमने उसे दिक्कत में डाल दिया। चार आदमियों के सामने कहने में उसे संकोच हो कि पचास रुपए महीना--दीनता लगे। और या उसे झूठ बोलना पड़े कि पांच सौ रुपए महीने मिलते हैं। अकारण उसे परेशानी में क्यों डालना? ऐसे प्रश्न क्यों खड़े करना?
हमारा मुल्क तो बहुत अदभुत है। हम तो न केवल यह पूछते हैं कि तनखाह कितनी है, यह भी पूछते हैं कि ऊपर से कुछ मिल जाता है कि नहीं? पूछते ही नहीं हैं, वह आदमी भी कहता है, हां! अजीब है हमारा मुल्क! बुरा है, अशुभ है, अयोग्य है, यह खयाल में नहीं है, बोध में नहीं है।

किसी को टेप सुना दिया, किसी को किताब दे दी। यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा। बात खत्म हो गयी, आपको काम पूरा हो गया। उसे कुछ लगा होगा, कहेगा। नहीं लगा होगा, नहीं कहेगा। कई बार लग भी सकता है और न कहे। कई बार तो ऐसा होता है कि जब बात कोई बहुत गहरी लग जाती है, तो कहने का मन नहीं होता है। कोई पूछता है, तो भी बुरा लगता है। कहने का भी मन नहीं होता।

तो खबर भर पहुंचा देनी है। टेप सुना दूना है, किताब पहुंचा देनी है। खबर पहुंचा देनी है, बांधना नहीं है किसी को। और एक-एक व्यक्ति को व्यक्ति की हैसियत से खबर पहुंचा देना है। किसी संगठन के सदस्य की हैसियत से नहीं। निश्चित ही दस मित्रों को ठीक लगेगा और दस मित्र बैठकर बात करेंगे, तो वह दस मित्र ही हैं, एक संगठन नहीं। पचास मित्र भी एक संगठन नहीं हैं। और मित्र की मुक्ति है, मित्र की एक स्वतंत्रता है। उसे मेरी सब बातें ठीक नहीं भी लग सकती हैं। एक बात ठीक लग सकती है, उतनी मैत्री भी चल सकती है।

हमारा यह भी आग्रह होता है मानने के लिए कि राजी होंगे, तो पूरे के लिए और राजी नहीं होंगे, तो पूरे के लिए! यह भी बड़ी नासमझी है। यह भी गलत है। एक आदमी मेरी एक बात से नाराज हो जाता है, तो मेरी सारी बातों से नाराज हो जाता है। और या एक आदमी मेरी एक बात से राजी हो जाता है, तो सब से राजी हो सकता है। बुद्धिहीनता है यह। जो मेरी एक बात से राजी नहीं है, उसकी दोस्ती रहनी चाहिए। चलेगा, इसमें हर्ज क्या है? छोड़ो इस बात को, उससे हमारा मेल नहीं बैठ रहा है। जिस बात से राजी है, उससे दोस्ती चल सकती है। एक छोटी सी बात से दोस्ती चल सकती है। आग्रह ही नहीं करना चाहिए कि सब में मेल होगा तभी दोस्ती चलेगी, यह आग्रह बहुत डिक्टोरियल हैं। यह आग्रह बहुत तानाशाही से भरा हुआ है। टोटलरेरियन है यह आग्रह, पूरा होगा तो।

तो, गुरु भी कहता है कि पूरे राजी हो जाओ मुझसे। शिष्य भी कहता है कि पूरे राजी होंगे तभी। मगर पूरे का सवाल क्या है? जिंदगी सब अधूरी है, यहां पूरा कुछ भी नहीं है। पूरा सब मोक्ष में होता है। यहां पूरा होती ही नहीं। पृथ्वी पर सक अपूर्ण है। यहां दोस्ती अधूरी है, प्रेम अधूरा है। यहां प्रेम भी पूरा नहीं, दोस्ती भी पूरी नहीं। यहां कोई चीज पूरी नहीं हो सकती पृथ्वी पर। पृथ्वी के होने में अपूर्णता है। यानी पृथ्वी पर अस्तित्व भी अपूर्णता हो सकता है। पूर्ण जैसे ही कुछ हुआ, पृथ्वी के बाहर गया। इसीलिए पूर्ण को हम मोक्ष भेज देते हैं। फिर उसको वापस नहीं बुलाते, बुलाने का सवाल ही नहीं, बात खत्म हो गयी, बुद्ध गए, महावीर गए, राम गए, कृष्ण गए। वह एकदम खो जात हैं। जैसे ही कोई पूर्ण हुआ, वह छुटकारा पा जाता है, इस जगत से।

इस जगत में होना, अपूर्ण होना है। इसलिए किसी चीज में पूर्ण की जिसने मांग की, वह नासमझी में पड़ जाता है। पति ने अगर पत्नी से कहा पूरा प्रेम मेरी तरफ, तो मुश्किल शुरू हो जाती है। खतरा हो गया, क्योंकि बात ही गलत है असंभव है। और असंभव की चेष्टा में जो थोड़ा बहुत प्रेम हो सकता था, वह मर जाएगा। वह नहीं हो सकेगा। किसी मित्र से कहा कि पूरी मित्रता कि दुश्मनी की शुरुआत हो गयी। यह दुश्मन का ही गैश्वर है, यह मांग है

कि पूरी मित्रता चाहिए। यह पूरे का सवाल नहीं है, और मुझे पूरे होने, पूरे राजी होने की बात ही नहीं है जरा भी। जिस काम के लिए आप राजी हों, और ठीक लगे, और आनंद मालूम पड़े, उसको पहुंचा देना दूसरे तक। वह आप तक खत्म न हो जाए, इसकी सुगंध थोड़ी दूसरे तक पहुंचानी चाहिए।

यह जीवन जागृति केंद्र है। यह सब मित्रों का मिलन भर है, कोई संस्था नहीं है। जिस मित्र की मौज है, कभी भी खिसक जाए। फिर मुझसे लोग पूछते हैं कि फलां आदमी नहीं दिखाई पड़ता? यह कोई समस्या थोड़े है कि आदमी दिखाई पड़ना ही चाहिए। यहां मौज तथा आनंद का सवाल है। मौज नहीं है, नहीं दिखाई पड़ रहा है। इसमें क्या लेना-देना है?इसको पूछने कहां जाना है कि अब आप क्यों दिखाई नहीं पड़ते हैं? यह बात ही गलत है। जिसकी मौज थी, वह आता था, जिसकी मौज नहीं है, वह नहीं आता है।

तो कोई आएगा, कोई जाएगा। यह मित्रों का मिलन है, इससे ज्यादा नहीं है। दरवाजे सब खुले हैं, कहीं कोई दीवाल नहीं है। कहीं से भी कोई प्रवेश करे, कहीं से भी कोई विदा हो जाए। उससे जाते वक्त भी न पूछे। हो सकता है, संकोच में रुकना पड़े। उससे पूछें ही मत। चला जाए, तो चले जाने देना। आ जाए, तो आ जाने देना। आ जाए, तब भी मत पूछना कि दो वर्ष कहां थे? यह सारी मांग गलत है। यह सारी मांग संगठन की है। संगठन की मांग ही नहीं होनी चाहिए। मित्रों का मिलन है। दस मित्र आज हैं, कल बारह हैं, परसों पंद्रह हैं, कल दो हैं। यह सब जिंदगी ऐसे ही बदलती है, ऐसे ही चलती है। गंगा कहीं बिलकुल पतली है, कहीं बहुत चौड़ी हो जाती है। कहीं सूख जाती है। कहीं रेत ही रेत दिखाई पड़ती है, कहीं सागर हो जाती है। जिंदगी ऐसे ही चलती है। इसमें आग्रह जरा भी रखने की जरूरत नहीं है।

एक आदमी न आए तो दुख-सुख नहीं, एक आदमी आए तो दुख नहीं, सुख नहीं। जितनी देर सहजता के साथ चल सकें, साथ चलिए। फिर रास्ते अलग हो गए हैं, वह अपने रास्ते चले गया है। हो सकता है, कल फिर रास्ते कट जाए और फिर मिलन हो जाए, तो उससे कुछ नहीं कहना चाहिए कि बीच में कहां थे।

इसको ध्यान में रखें और एक-एक व्यक्ति सोचे। मैं कुछ कहूं कि ऐसा-ऐसा करें, यह खयाल भी नहीं है। सोचें कि क्या करता है। एक-एक आदमी इतनी बड़ी शक्ति है कि इतना कर सकता है, जिसका हिसाब नहीं।

लोग मुझसे कहते हैं, आपके पास संगठन है, क्या होगा? मैंने कहा, यह सवाल ही नहीं है, संगठनों से ही क्या हो सकता है? अकेला चिल्लाता रहूंगा। कुछ और चिल्लानेवाले मिल जाएंगे। वे भी चिल्लाते रहेंगे। लाख दो लाख अकेले-अकेले भी चिल्लाए, तो भी आवाज पैदा हो जाएगी। कोई इकट्ठे चिल्लाने की जरूरत थोड़े है। कोरस की जरूरत नहीं है। कोरस, इकट्ठे गाने की जरूरत नहीं है कि सब इकट्ठा काम करें, और सब इकट्ठा गाए। अकेला भी चलेगा। एक-एक गीत भी चल जाता है। और दुनिया में जो हिम्मतवर लोग थे, जिन्होंने जाना है, उन्होंने अकेले ही गीत गाया है। अकेले ही गा लेना काफी है। फिर प्रीतिकर लगे,

आप भी अकेले गा लेंगे। सुगंध पहुंच जानी चाहिए, खबर पहुंच जानी चाहिए। कोई सत्य किसी भी व्यक्ति को दिखाई पड़ गया हो, और कोई आनंद किसी को भी मिल गया हो, तो वह संपत्ति उसके साथ नष्ट नहीं हो जानी चाहिए, इतना ही ध्यान रहे। इतना ही काफी है।
और बहुत से प्रश्न हैं, वह सब तो अब नहीं हो पाएंगे। अभी दुबारा आ रहा हूं, जल्दी, तो तीन-चार दिनों में ज्यादा-ज्यादा प्रश्नों पर भी बात करनी है। बहुत काम के प्रश्न रह गए हैं। दुबारा जब मिलूंगा, तब इन पर बातचीत होगी।

अहमदाबाद,

१९-८-१९६९

मेरा दायित्व

प्रश्न आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें आप कहां तक पहुंचे हैं? क्या कोई इतना ऊंचा फल दिखाई दे रहा है?

ओशो, इन सब बातों में इतने जल्दी फल दिखाई देते। और भारत जैसे मुल्क में, जहां परंपराएं बहुत पुरानी और बहुत जड़ हो गयी हैं, फल देखने की जल्दी भी नहीं करनी चाहिए। वैसे भी फल के प्रति मैं बहुत उत्सुक नहीं हूं। हमें जो ठीक दिखाई पड़ता है, उसके लिए श्रम करना चाहिए। अगर वह ठीक है, तो फल आएगा--आज, कल हमारे न होने पर। यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है। ठीक क्या है, उसकी दिशा में श्रम करना उचित है। लेकिन ऐसा कह सकते हैं कि हल दिखाई देने भी शुरू हुए। क्योंकि उत्सुकता बढ़ी है और हजारों लोग उत्सुक हुए हैं। उस दिशा में चिंतन भी शुरू हुआ है, विचार भी शुरू हुआ है।
और मेरी दृष्टि में विचार ही महत्वपूर्ण है। कर्म को मैं विचार की छाया मानता हूं। अगर एक बार विचार में बदलाहट आयी, तो कर्म में बदलाहट सुनिश्चित है। वह आएगी ही। मेरा लक्ष्य भी विचार की क्रांति से ज्यादा नहीं है; क्योंकि मेरी ऐसी समझ है कि भारत ने हजारों वर्षों से सोचना ही बंद कर दिया है। एक बार सोचने की धारा शुरू हो जाए, तो बड़ी से बड़ी क्रांति संभव है। और सोचने की धारा शुरू करेंगे, तो निगेटिव माइंड, वह निषेध करने वाला चित्त पैदा करना जरूरी है। इतना ही काम मैं कर रहा हूं। इनकार कर सकें, ऐसी वृत्ति पैदा हो जाए। वैसे हम हजारों साल से हो करने वाली कौम हैं, जोर हर बात में हां कहते हैं। स्वीकार हमारा भाव हो गया है।

प्रश्न--अगर आपको कोई फालो कर रहा हो?

ओशो--अगर वे ऐसा कर रहे हैं, तो मैं उनसे ही लड़ रहा हूं। मेरी तरफ से तो नहीं करने दूंगा उनको। अगर कोई ऐसा कर रहा है, तो वह मुझे फालो भी नहीं कर रहा है। क्योंकि मैं कह रहा हूं--कहने की हिम्मत स्वयं और सोचनी की वृत्ति की बात। किसी को भी आंख बंद करके किसी के भी पीछे नहीं जाना है। उसमें मैं भी सम्मिलित हूं। अगर कोई आंख बंद करके मेरे पीछे जा रहा है, तो उससे बड़ा मेरा दुश्मन कोई नहीं है। मैं उससे भी लड़ रहा हूं। वह जाएगा। क्योंकि हमारी जो पुरानी आदत है हां कहने की, तो हम उसमें भी हां कह सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर अंधा होना हमारी प्रवृत्ति बन गयी है, तो हम उसमें भी अंधे हो सकते हैं।

मेरे लिए हां कहना बहुत मुश्किल है, आउट आफ हैबिट है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह समस्त पुराने चिंतन के विपरीत है। इसलिए मेरे लिए हां कहना बहुत मुश्किल है, आउट आफ हैबिट है। बहुत मुश्किल है। यानि मुझे तो सोचना ही पड़ेगा। सोचना इसलिए पड़ेगा कि पुराना जो मन है हमारा वह, लंबी तैयारी है। मैं उसके बिलकुल विपरीत हूं। अगर मैं उससे ही जुड़ा हुआ हूं, उसकी ही कंटिन्युटी हूं, तब तो कहां कहना बहुत आसान है।

प्रश्न--आप जो बोलते हैं, वह तो आम वर्ग में छायी हुई है और आप कहते है कि आप उससे अलग बात बताते हैं, तो जो यहां के आचार्य नास्तिक होना बोले तो वह पुराने जमाने में नास्तिकपन था।

जब भी कोई परंपरा मरने के किनारे पहुंचती है, तो आखिरी उपाय बचन का, वह यह बचता है कि जो नया है, वह हम में है ही। यह आखिरी उपाय है, किसी भी मरती हुई संस्कृति का, कि वह अंत में दावा यह करती है कि जो भी कहा जा रहा है उसके खिलाफ, वह हमारे भीतर है। तो यह अंतिम उपाय है। हां, बिलकुल ही उस जगह खड़ा है, जहां से उसको मिटना पड़ेगा। क्योंकि हिंदूइज्म का ही सवाल नहीं है पूर्ण माइंड का--वह चाहे जैन का हो, चाहे बौद्ध का हो, चाहे मुसलमान का हो सबका है।

प्रश्न--स्पष्ट रिकाघडग

ओशा--कभी नहीं। बुद्ध को एक्सेप्ट किया उसने उसी क्षण में जब, उसका बचना मुश्किल हो गया। और एक्सेप्ट करके, हिंदूइज्म ने बुद्ध की पूरी की पूरी व्याख्या और अवस्था बदल दी। बौद्ध धर्म तो मर गया हिंदुस्तान में। और बुद्ध ने जो कहा था, उसकी सारी व्याख्या हिंदू धर्म ने अपने अनुकूल कर ली। हिंदू धर्म ने कभी कुछ स्वीकार नहीं किया है। व्याख्याएं बदलने में हिंदू धर्म कुशल है। स्वीकार कभी नहीं किया है। व्याख्या बदलकर स्वीकार करना बड़ी कुशलता की बात है। हिंदूइज्म मरना नहीं चाहता किसी भी कीमत पर, जिंदा रहना चाहता है किसी भी कीमत पर! क्योंकि असल में जो भी चीज पैदा होती है, उसे एक समय तो मरने की तैयारी दिखानी चाहिए, अन्यथा वह बोझिल हो जाती है।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--नहीं, कोई आइडिया गुड और बैड नहीं होता। कोई चीज हमेशा जिंदा नहीं रहती। हर चीज जो पैदा हुई, उसका एक वक्त है जिंदा रहने का, और मरने का। जब वह मरने से इनकार करती है, तो बोझिल हो जाती है। अल्टीमेट ट्रुथ होगा, लेकिन अल्टीमेट ट्रुथ का तुम्हें पता नहीं चल सकता। तुम्हारे सारे ट्रुथ रिलेटिव होंगे और कोई रिलेटिव ट्रुथ कभी भी आखिरी तक जिंदा नहीं रहता। अल्टीमेट ट्रुथ क्या है, यह भी हमें पता नहीं है, किसी को भी पता नहीं।

प्रश्न--उसका अर्थ लोग करते हैं बहुत?

नहीं, नहीं वह सबकी फिलासफी है और सभी अल्टीमेट ट्रुथ का दावा करनेवाले लोग हुए हैं। अलग-अलग दावे कर सकते हैं कि उनका जो ट्रुथ है, वह अल्टीमेट है। किसी का ट्रुथ अल्टीमेट नहीं है। सबके ट्रुथ रिलेटिव हैं। जो भी आज मैं कह रहा हूं, वह भी उतना ही रिलेटिव है। कल इसका करने की तैयारी दिखानी चाहिए। अगर वह जिद्द कर ले इस बात की, अगर मैं जिद्द कर लूं कि मैं जो कह रहा हूं वह अल्टीमेट है, तो मैं मनुष्य के विकास में बाधा बनूंगा। अल्टीमेट का दावा हमेशा विकास में बाधा बनता है। चूंकि विज्ञान कोई अल्टीमेट का दावा नहीं करता है, इसलिए विज्ञान निरंतर विकासमान है। और जो अल्टीमेट का दावा करते हैं, वे मनुष्य के ज्ञान में सबसे बड़ी बाधाएं खड़ी कर देते हैं। दावा सभी करते हैं। सारे लोग अलग-अलग कहेंगे, सब लोग अलग-अलग कहेंगे, लेकिन सबके पास अपने अल्टीमेट कंसेप्शन हैं। मैं जो कह रहा हूं, उसमें हिंदू धर्म से विरोध का सवाल नहीं है। मेरा तो इज्म से ही विरोध है। हिंदूइज्म का सवाल नहीं है।

प्रश्न--हिंदूइज्म तो वे आफ लाइफ है।

ओशो--यह तो सभी कहते हैं। यह तो क्रिश्चियन भी कहता है कि वह, वे आफ लाइफ है। सूफी भी कहता है कि इस्लाम धम, वे आफ लाइफ है। जैन भी यही कहता है वे आह लाइफ है, बुद्धिस्ट भी यही कहता है। यह सब तो बहुत कनिंगनेस के हिस्से हैं। जब इज्म मरने लगता है, तो वह अपनी व्याख्या बदलना शुरू करता है। वह कहता है कि यह वे आफ लाइफ है। यह फिलासफी आफ लाइफ है, इसको इज्म से कोई संबंध नहीं है। इज्म को मतलब ही यह है कि जब भी कोई यह दावा करता है कि जो जाना है, वह अल्टी मेट है; जो जाना गया है, वही सत्य है। जो जाना गया है, इसके विपरीत असत्य है, तब इज्म खड़ा हो जाता है। इज्म डाग्मेटिक है। तो सारी दुनिया में धर्म, सारी दुनिया के मत, इज्म हैं। मेरा जो कहना है, वह हिंदूइज्म के खिलाफ नहीं है। मनुष्य का मन वहां पहुंच गया है, जहां कोई इज्म उसे बांधने में समर्थ नहीं है। अब इज्म की धारणा टूट जानी चाहिए। मनुष्य एक ऐसी जगह आ गया है, जहां उसे वाद से, पंथ से, धर्म से मुक्त होना चाहिए। यह मनुष्य के विकास में बहुत बड़ी छलांग होगी। हिंदूइज्म से मुझे कोई मतलब नहीं है। मैं इजम के अगेंस्ट हूं।

यह जो सवाल है हिंदू या मुसलमान या किसी इज्म का, उससे मेरा कोई संबंध नहीं है। विरोध से भी मतलब नहीं है। मेरा कहना सिर्फ इतना है कि इज्म में बंधनेवाला चित्त सीमित

होता है, रोकता है। यह जो रोकने की प्रक्रिया है, उसे तोड़ने की जरूरत है--सब तरफ से तोड़ने की जरूरत है। न मार्क्स किसी को बांध पाए, न कृष्ण किसी को बांध पाए, न बुद्ध न महावीर न कोई किसी को बांधने की कोशिश करे और न कोई बंधने की ही कोशिश करे। व्यक्ति मुक्त हो सके। समस्त विचार की धारणाओं से और स्वयं सोचने में समर्थ हो सके इसकी मेरी चेष्टा है।

अगर कोई कहता है कि यही हिंदूइज्म कर रहा है, तो ठीक है वह मेरे साथ है, वह मेरे काम में लग जाएगा। अगर कोई कहता है कि यही मुसलमान कह रहा है, तो ठीक है, वह मेरे साथ हो जाए। लेकिन वह यह कहकर भी मुझे लड़ाई जारी रखेगा। हमेशा जब भी इज्म खड़ा होता है तो व्हेस्टेड इन्ट्रेस्ट पैदा हो ही जाएंगे। क्योंकि पुजारी होगा, मंदिर होगा, आश्रम होगा, धन होगा, व्यवस्था होगी, गुरु होंगे, शिष्य होंगे तो व्हेस्टेड इन्ट्रेस्ट पैदा होगा ही।

प्रश्न-अस्पष्ट है

ओशो--अफ्रेड होना चाहिए अफ्रेड उन्हें होना चाहिए। मैं भी अफ्रेड हूं, भयभीत मैं भी हूं, वह सब मेरे पास भी खड़ा हो सकता है। और इसलिए न मेरा कोई अनुयायी है, न संप्रदाय है। मैं तो मानता हूं कि समस्त चिंतन इंडीविजुअल है। इसलिए न मेरा कोई अनुयायी है, न मेरा कोई संप्रदाय है, और न मैं किसी का गुरु हूं।तो, मैं भी अफ्रेड तो हूं, इसलिए तो सारे इंतजाम कर रहा हूं कि मेरे साथ वह बात न बन सके। मैं किसी को बांधनेवाला सिद्ध नहीं होना चाहूंगा।

अगर ऐसा तुम्हारा खयाल हो, तो मेरे साथ खड़े होना चाहिए। और जिन लोगों को भी यह लगता हो कि यह सब पुराना है, वही है; जिनको भी ऐसा लगता हो, उन्हें मेरे साथ खड़ा होना चाहिए।

प्रश्न--आपके साथ क्यों?

ओशो--मैं जो कह रहा हूं, अगर वह लग रहा हो कि यही वेद में है, यही पुराण में है, यही कृष्ण कहते हैं, यही महावीर कहते हैं, यही बुद्ध कहते हैं, अगर ऐसा लगता है, तो वह जो महावीर और बुद्ध को माननेवाले है, उसे मेरी दुश्मनी में खड़े होने का कोई कारण नहीं है। लेकिन वह मेरी दुश्मनी में खड़ा है, और इसलिए मैं कहता हूं कि जब वह यह कहता है कि यही पुराण कहते हैं, तो गलत कहता है। इन दोनों में से कोई एक बात भी ठीक है, और यही पुराण कहते हैं, तो मैं उसके पुराणों को ही सिद्ध कर रहा हूं। तब मुझसे दुश्मनी का कोई कारण नहीं है। मेरी दो बातें हैं--अगर मेरी बात पुरानी ही है, तो मुझसे दुश्मनी का क्या कारण है? कोई कारण नहीं रह जाता। और अगर दुश्मनी का कारण है और फिर वह कहता है, मेरी बात पुरानी है, तो फिर उसमें चालाकी है।

प्रश्न--व्यक्ति को रिस्पेक्ट तो मिलती ही है, जैसे कृष्ण को मिला है।

ओशो--अगर यह कह रहे हों, तो मैं यही कह रहा हूं कि व्यक्ति का रिस्पेक्ट करना गलत है। तो फिर मेरी बात नयी हो जाएगी। यह सवाल नहीं है, मैं यह कह रहा हूं कि आप जान ही

नहीं सकते कि कौन एनलाइटेंड सोल है और कौन नहीं है। और न आप तय कर सकते है; क्योंकि उसी कृष्ण को जैनों ने नर्क में डाल दिया है। एनलाइटेंड सोल का तो सवाल ही नहीं है। समझना चाहिए कारण। जैनों के क्राइटेरियन सोचने के, अहिंसा के हैं। तो कृष्ण इनलाइटेंड नहीं हो सकत; क्योंकि कृष्ण तो लोगों को हिंसा में ले गए हैं अतः उनको नर्क में डाला गया है। मैं तो यह कह रहा हूं कि अगर तुम कहते हो कि पुरानी धारणा कृष्णको, महावीर को, बुद्ध को, व्यक्तियों को आदर देने की है, तो मैं कहता हूं कि व्यक्तियों को आदर देनेवाला, बांधनेवाला सिद्ध हुआ है। व्यक्तियों को आदर देने की जरूरत नहीं है। तो फिर मेरी बात नयी हो जाएगी, अगर तुम कहते हो। और अगर पुरानी है, तो मैं झगड़ा नहीं करता कि पुरानी होने में मुझे कुछ विशेष दर्द है। मेरा कहना कुछ इतना है कि जो लोग यही सिद्ध करना चाहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वही हमारी पोथी में कहा है,तो फिर मेरा उनसे क्या झगड़ा है? उनको क्या परेशानी है मुझसे? मैं तो यह कहता हूं कि अपने को रिस्पेक्ट करना पर्याप्त है।

प्रश्न--ओशो, क्या यह सच नहीं है कि आप एक बहुत अहम चीज को नजरंदाज कर गए कि सनातन परंपराओं में एक ही स्वयं ही प्रक्रिया है, जो हर नयी चीज को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। और उस दृष्टि से आप देखें, तो आपकी विचार क्रांति जो उथल-पुथल लाएगी सोचने की दिशा में यह आप विरोध में नहीं है, बल्कि

ओशो--यह सवाल नहीं है कि इसकी हम क्या व्याख्या करते हैं। इसे आप विरोध कहें, इसे आप समन्वय की प्रक्रिया कहें, यह सवाल भी नहीं है। सोचने का ढंग विचार को उकसाते नहीं हैं। विचार को मारने की तरफ भगवान है, तो फिर मेरी बात पर शक और संदेह और विचार करने का सोचने के ढंग विचारा को उकसाते नहीं हैं। विचार को मारने की तरफ बल देते हैं; क्योंकि अगर किसी व्यक्ति ने यह मान लिया कि कृष्ण जो कहते हैं, उसे मानने का मन ज्यादा होता है। अगर मैं वादा करूं कि मैंने भगवान को पा लिया है, या मैं भगवान हूं, तो फिर मैं आपको विचार को नुकसान ही पहुंचाता है। अगर आप ही मुझे मान लें कि यह आदमी भगवान है, तो फिर मेरी बात पर शक और संदेह और विचार करने का उपाय कम हो जाता है। मेरा कहना कुल इतना है कि कोई व्यक्ति अथारिटी नहीं है।

और अब यह हमारे खयाल में आएगा कि कोई अथारिटी नहीं है तभी हम सोचने को मजबूर होंगे, अन्यथा विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अगर अथारिटी है और पुराना सारा चिंतन अथारिटेटिव है--वह यह मानकर चलता है कि एक आदमी तीर्थंकर है, एक भगवान है, एक सर्वज्ञ है, उसने पा लिया है, और जान लिया है। वह जो कह रहा है वह ट्रुथ है, तो फिर बाकी लोगों को कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। बाकी लोगों के तो मानने का सवाल है। पुराना सारा मन माननेवाला मन है। तो उसे लड़ाई कहें, समन्वय कहें, यह सवाल नहीं नहीं है; क्योंकि अंततः लड़ाई भी समन्वय ही लाती है। अगर हम दोनों विरोध भी करें एक दूसरे का और अंततः जिद्दी और अहंकारी नहीं हैं, तो हम एक जगह पहुंच जाएंगे, जहां हमारा विरोध आत्मसात होगा और दोनों बातें एक हो जाएगी। वह बात न आपकी होगी

फिर, न मेरी होगी, बल्कि दोनों के संघर्ष का अंतिम फल होगी। सारा विरोध भी, थीसिस, एंटीथीसिस की सारी प्रक्रिया भी, अंततः सिन्थीसिस पर ले जाती है। तो, समन्वय और विरोध का सवाल बड़ा नहीं है। लेकिन समस्त समन्वय विरोध से ही होते हैं। कोई समन्वय बिना विरोध के नहीं आता। और जो समन्वय बिना विरोध के आने की कोशिश करता है, वह हमेशा मरा हुआ समन्वय होता है, वह समन्वय कभी सच्चा नहीं होता। क्योंकि समन्वय आने के लिए भी एंटीथीसिस से गुजर जाना एकदम जरूरी है। यह मैं नहीं कह रहा हूं मैं जो कहता हूं उससे नया मन पदा हो जाएगा। मैं यह कह रहा हूं कि पुराने मन के साथ अगर एक संघर्ष चले, तो एक नया मन पैदा होगा, जो न पुराने जैसा होगा, न उन लोगों जैसा होगा जो लोग संघर्ष चलाएंगे।

प्रश्न--तो रूप क्या होगा?

ओशो--हां, रूप बहुत तरह के हम सोच सकते हैं। जरूरी नहीं है कि वह वैसा ही होगा, लेकिन कुछ अनुमान लगा सकत हैं। जैसा कि पुराना पुरा का पुरा मन किसी रूप में प्रामाणिक है, अथारिटी है, साक्षी है, विश्वास और आस्था पर खड़ा है। नए मन की अब कोई संभावना नहीं है कि वह आस्था, शास्त्र, विश्वास पर खड़ा हो। नया मन संदेह पर, विचार पर खड़ा होगा।

प्रश्न--क्या आप कुछ गाइड करेंगे?

ओशो--नहीं मैं किसी को गाइड नहीं कर रहा बात चित कर रहा हूं मित्रों से, गाइड किसी को नहीं कर रहा। क्योंकि मैं मानता ही नहीं कि कोई किसी का गाइड हो सकता है। हम मित्र हो सकते हैं, हम बात कर सकते हैं।

प्रश्न--अभी आपने गीता का दृष्टांत दिया कुछ?

ओशो--यह मैं मना कह रहा हूं। यह जो तुम दूसरी बातें कह रहे हो, उसमें कोई मुझे झंझट नहीं है। गीता का दावेदार जो कृष्ण है, वह कहता है, आओ मेरी शरण में, और सब छोड़ दो, मेरी शरण में आ जाओ, तुम उपलब्ध हो जाओगे। इसे मैं इनकार करूंगा।

प्रश्न--यह तो साधन की सुगमता के लिए है।

ओशो--उसको मैं साधन भी नहीं कह रहा हूं। यही तो झगड़ा है। मैं यह कह रहा हूं कि जब भी कोई व्यक्ति किसी कि शरण में जाता है, तो आत्मघात कर लेता है। जो शरण में गया उसने आत्मघात किया, और जिसने शरण में बुलाया, वह आदमी दूसरे का मित्र नहीं है, वह दूसरे को मिटा ही रहा है। गीता मित्र हो सके, कृष्ण मित्र हो सके, यही मैं चाह रहा हूं। कृष्ण गुरु हैं, गाइड हैं, मित्र नहीं है। कोई जैन हिम्मत नहीं करेगा, महावीर को मित्र कहने की। मीरा कह सकती है, सखा। पति भी कह सकती है, लेकिन मीरा का भी समर्पण भाव पूरा है। मैं कह रहा हूं कि समर्पण का भाव ही गलत है। किसी एक का किसी दूसरे के प्रति सरेंडर होने की बात ही गलत है।

प्रश्न--व्यक्ति की बात है न तो विश्वास चाहिए।

ओशो--फिर वही बात हो गयी न। फिर तो यह आपको मानकर चलना पड़ेगा कि अचीव किया। यह तो विश्वास की बात हो गयी आपके। तो वही मैं कह रहा हूं कि पुराना जो माइंड था, वह विश्वास पर खड़ा हुआ है, विचार पर खड़ा नहीं है। कृष्ण को एक आदमी मान सकता है कि वह पहुंच गए, दूसरा आदमी मान सकता है कि नहीं पहुंचे। लेकिन विचार का कोई उपाय नहीं है कि पहुंचे या नहीं पहुंचे। क्राइस्ट या नहीं पहुंचे। एक मान सकता है कि पहुंच गए, दूसरा मान सकता है कि पागल हैं। यह बात विचार पर खड़ी हुई नहीं है। यानी इसके लिए कोई विचार निर्णायक नहीं हो सकता है कि कृष्ण पहुंच गए या नहीं पहुंचे।

प्रश्न--अस्पष्ट है

ओशो--नहीं, नहीं टाइम कुछ प्रूव नहीं कर सका। जरा भी प्रुव नहीं कर सका, एक जैन नहीं समझा सका टाइम, कि कृष्ण पहुंच गए हैं। एक हिंदू को नहीं समझा सका, महावीर का समय गुजर जाना कि महावीर सर्वज्ञ हैं। टाइम की तो बात दूर है। कितने ही करोड़ वर्ष बीत जाए, तो कुछ तय न होगा, क्योंकि तय क्या होगा? विश्वास करने में तय कभी होना ही नहीं है। जिसको विश्वास करना है, करना है। नहीं करना है, नहीं करना है। टाइम सिर्फ आइंटिफिक ड्रुथ को प्रूव करता है, रिलीजस ड्रुथ को प्रूव नहीं करता है। नहीं करता है इसलिए कि रिलीजस ड्रुथ विश्वास पर खड़ा है। विश्वास का टाइम से कोई संबंध नहीं है।

बिलकुल हैं, लेकिन विश्वास से वह नहीं जानी जा सकती। वह तो विचार का अतिक्रमण होगा, तब जानना होगा। इसका कोई विचार करे कि उस जगह पहुंच जाए, जहां विचार व्यर्थ हो जाए, तो ट्रांसेंडेंस होगी, लेकिन वह विश्वास से नहीं होती है। विश्वास तो विचार को बिलकुल प्राथमिक प्रक्रिया है।

प्रश्न--अगर विचार निरंतर है तो शाश्वत क्या है, और विचार का मतलब क्या है?

ओशो--शाश्वत को खोजना ही विचार का मतलब है, और विचार निरंतर है। और एक सीमा आती है और की जहां विचार को पता चलता है कि और आगे जाना हो, तो विचार छोड़ देना पड़ेगा। विचार की अंतिम प्रक्रियाओं से गुजरकर यह बोध होता है कि एक जगह विचार भी छूट जाता है। लेकिन तब विश्वास नहीं आता। विश्वास तो विचार के पहले है। जो आदमी विचार करता ही नहीं, वह विश्वास करता है। जो व्यक्ति विचार का ट्राटेंड कर जाता है, वह जानता है--ही नोज। वह विश्वास नहीं करता है। जानने में और विश्वास करने में जमीन आसमान का फर्क है। जहां जानने का संबंध है, वहां विश्वास बिलकुल नहीं है। विश्वास की कोई बात ही नहीं है जानने में।

यह इस पुराने माइंड को ही तोड़ना है। यह मस्तिष्क खतरनाक सिद्ध हुआ है, हितकर सिद्ध नहीं है; क्योंकि मस्तिष्क ही नहीं है। जो सोच ही नहीं सकता, वह ठीक अर्थों में आदमी ही नहीं है। उसमें सोचना पैदा करना ही पड़ेगा। लेकिन पुराना धर्म उस आदमी को भी जगह देने की कभी नहीं सोच सकता। इसलिए पुराने धर्म ने मनुष्य को विकास में सहायता कम दी, मनुष्य के विकास को रोकने में सहयोगी बना। जो आदमी सोच नहीं सकता, उसको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। लेकिन उसे पुराना धर्म विश्वास बनाकर संत भी बना

सकता है। तो ईडियट भी परमहंस हो सकते हैं पुराने धर्म की दुनिया में। जो कुछ भी नहीं सोच सकता है, बिलकुल इंबेलाइल है, वह भी परमहंस हो सकता है। परमहंस इसलिए हो सकता है कि वह सोच नहीं सकता। वह निपट गंवारपन का काम कर रहा है पाखाने के पास बैठा हुआ है, पेशाब पी रहा है, उसमें कोई भेद नहीं है लेकिन उसे हम परमहंस भी कह सकता हैं। मैं यह कह रहा हूं कि अगर गलत नहीं है--विचार ही मनुष्य की लक्षण है--तो फिर हेजीटेट करो, तब कोई बात ही नहीं है। फिर तुम पेड़ हो जाओ, जानवर हो जाओ। मैं यह कह रहा हूं कि पत्थर हो जाओ, फिर कोई हर्जा नहीं है।

जिनको यह खयाल है कि सब फार्म भगवान के हैं, ठीक है, हो जाए कुछ भी। और मैं मानता हूं कि मनुष्य के भीतर कोई घटना घटी है, जो पत्थर के भीतर नहीं घट रही है। मनुष्य के भीतर कोई घटना घटी है जो परमात्मा को भी विकसित करने में, अविकसित करने में सहयोगी हुई है। वह जो मनुष्य की चेतना है, उसे हम कितना बल दे सके, कितनी गति दे सकें--दो रास्ते हो सकते हैं। या तो उस चेतना को हम रोकें, या उसे गति दें! मेरा कहना कुल इतना है इतना है कि पुराना मन उसको रोकनेवाला सिद्ध हुआ है।

प्रश्न--वह इतनी गति दे कि वह अल्टीमेटली अल्टीमेट चेतना...।

ओशो--अभी तो अल्टीमेट का सवाल नहीं है। और मर्ज (विलीन) होती है या नहीं होती, यही मेरा कहना है। यह विचार करने की बात है। इसलिए ऐग्री करता हूं। वह विश्वास करने की बात है। यह विचार करने की बात है। वही मैं कह रहा हूं। पुराना मन कहता है कि विचार करो कि मर्ज (विलीन) होती है। और विश्वास करो कि इस भांति मर्ज होती है। झगड़ा मेरा यह नहीं है कि मर्ज (विलीन) होती है कि नहीं होती। झगड़ा मेरा यह है कि जीवन के समस्त विचार सत्य विचार करने योग्य हैं, विश्वास करने के योग्य नहीं है। अगर यह प्राइमरी है, तो फिर मैं जो कह रहा हूं, उसमें भेद हैं। भिन्नता है। क्योंकि पुराना मन बिलकुल दूसरी बात कहता है। वह यह कहता है कि विचार मत करो, विश्वास करो। विश्वास प्राइमरी (प्राथमिक) बात है। और तुमने संदेह किया, शक किया कि भटक जाओगे। मेरा कहना यह है कि संदेह नहीं किया, तो कभी पहुंच ही नहीं सकोगे। संदेह करोगे तो खोजोगे, प्रश्न करोगे, चिंतन करोगे, मनन करोगे, श्रम अनुसंधान करोगे, तो कभी न कभी पहुंच सकते हो।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--यह सवाल नहीं है। आप बिना जाने रख नहीं सकते कंपलीट कानिफिडेंस। इसको थोड़ा समझें--जब हम कहते हैं कंपलीट कान्फिडेंस। जिस बात को मैं नहीं जानता हूं उसे मैं कितना ही कान्फिडेंस रखने की कोशिश करूं, वह इनकंप्लीट रहेगा। क्योंकि बेसिकली, बुनियादी तौर पर मैं यह जानता ही रहूंगा कि मैं नहीं जानता। इसको भुलाया नहीं जा सकता। तुम थिंक (विचार करो या न करो, क्योंकि कंपलीट कान्फिडेंस भी थिंकिंग है और क्या हैं तुम यह सोचोगे न, कि मुझे कंपलीट कान्फिडें रखना है, तो क्या करोगे? यह कैसे करोगे? सोचोगे न?

प्रश्न--इट इज ए वेरी सिम्पल थाट।

ओशो--नहीं, नहीं, कितना ही सिम्पल इट इज ए थाट। डिसीजन (निर्णय) भी थाट (विचार) है। तुम डिसीजन लोगे न, जोकि नहीं जानता है। दी बेसिक इग्नोरंस रिमेन। कितना ही कंपलीट कान्फिडेंस हो, यह तुम जानते ही रहोगे कि कान्फिडेंस तुम्हारा लाया हुआ है।

रियलाइजेशन की जल्दी मत करो। जो कंपलीट कान्फिडेंस कर रहा है, वह तो बिलकुल इग्नोरेंट आदमी है। रियलाइजेशन करनेवाले को कान्फिडेंस करने की जरूरत नहीं है। कान्फिडेंस होता है। यह अगर जस्ट कमिंग की बात हो, तो न गाइड की जरूरत है, न गीता की जरूरत है, न धर्म की, न मंदिर की, न मूर्ति की।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--क्या मतलब है तुम्हारे हिंदू नहीं रहने का। तुम्हारे रहने की जरूरत ही नहीं है, अगर यह एलीमेंटरी बात है। तो हिंदू होने की क्या जरूरत है? बिलीव्हर करते हो न तुम, तो कुछ करते हो न? अगर तुम हिंदू हो, तो हिंदू होने में बिलीव्हर करते हो न? जब हम कहते हैं कि मैं हिंदू हूं, तो मैं हिंदू होने में बिलीव्हर कर रहा हूं न? तो विलीव्ह तो तुम कर रहे हो। और अगर कुछ भी हनीं करना है तो इतना कहना भी बेमानी है कि मैं हिंदू हूं।

हां, और उसको तुमने बिलीव्ह कर लिया है, और क्या किया है? तो यह पीपुल को डेड जो कर रहे हैं हजारों साल से, मैं उसके खिलाफ हूं। मैं कहता हूं, तुम जो हो, हो। न तुम हिंदू हो, न मुसलमान हो। यह हिंदू होना मुसलमान होना, सिखायी हुई बात है। और सिखाकर विश्वास दिलाया जा रहा है। बचपन से कि यह आदमी हिंदू है, यह मुसलमान है, यह ईसाई है। और तुम जो हो, वह हो। तुम जो हो, अगर उसे खोजना है, तो इस प्रोपेगेंडा से मुक्त होना पड़ेगा--जो सोसाइटी सिखा रही है कि तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, तुम फलां हो, तुम ढिकां हो। ये बिलकुल झूठी बातें हैं।

प्रश्न--ये एलीमेंट्री बातें हैं?

ओशो--एलीमेंट्री ही बातें कर रहा हूं। एलीमेंट्री बात करने की ही जरूरत है। यह मैं कह ही नहीं रहा हूं, यह तुम ही बार-बार कहते हो न कि इट हैज बीन सेड? जैसे ही इसको हम कहते हैं कि यह कही गयी है, फेलो की गयी है, तो मुझसे विरोध क्या है? फिर तुम मुझसे बात क्या कर रहे हो? फिर तुम्हें पहले से ही बिलकुल चुप होना है। मेरा मतलब आप समझे? मैं जो कह रहा हूं, वही यदि कहा गया है, वह माना गया है, तब तो मुझसे बात करने का सवाल ही नहीं उठता। बात ही नहीं करना चाहिए।

प्रश्न--आपने कहा कि विचार का जो चरम लक्ष्य है, वह शाश्वत की खोज है। तो क्या यह संभव नहीं है कि विरोधी विचारधारा के पश्चात शाश्वत सत्य, चिरंतन सत्य खोज में आया है, जो हमारे सामने है, गीता और वेद के रूप में है। इसके पीछे भी हजारों की चिंतन प्रक्रिया रही है, लगातार प्रयास के बाद यह फल निकला है। तो खोज शास्त्रों की खोज हो गयी, हम उसको, सनातन को दोहराने के बजाय यह समाज जड़ न हो जाए, उसको बचाने की कोशिश हम कर रहे हैं। हम उसमें और एक करने की कोशिश करें बजाए इसके--

ओशो--असल में शाश्वत की जो खोज है--शाश्वत कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी ने मुट्ठियां बांध ली हों और आपको दे दे। शाश्वत को पाने में खोज इतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना शाश्वत को पाना है। सच तो यह है कि खोज और प्राप्ति दो चीजें नहीं हैं। खोजने की प्रक्रिया में ही प्राप्ति है। तो अगर कृष्ण को मिल गया हो शाश्वत और आप खोज नहीं करते हैं, फिर कृष्ण को मान लेते हैं, तो आपको कभी नहीं मिल सकता। क्योंकि खोजने में ही मिलने की प्रक्रिया है। वह जो खोजने की बड़ी कोशिश है वही आपको रुपांतरिक करती है, और वहां पहुंचती है जहां शाश्वत के दर्शन होते हैं। आप तो कृष्ण को मानेंगे। कृष्ण को शाश्वत मिला है या नहीं, या आप जान नहीं सकते। मिला भी हो सकता है, नहीं भी मिला हो सकता है। आपके लिए तो यह सिर्फ मानने की बात होगी। यह विज्ञान के बाबत बिलकुल सच है, डुप्लीकेशन की कोई जरूरत नहीं है विज्ञान में। क्योंकि जो मिल गया है, वह आब्जेक्टिव है। जैसे एक आदमी ने बिजली के बाबत खोज कर ली है, तो मुझे और आपको बिजली के बाबत फिर से खोज करने की कोई जरूरत नहीं है, नासमझी है वह। बिजली फिर आब्जेक्टिव है, बाहर है। आपने भी खोज ली है, तो पचास लोगों के सामने प्रयोग करके आप बता देते हैं कि यह रही बिजली।

शाश्वत सत्य, जिसे हम धर्म का शाश्वत सत्य कहते है, चूंकि सब्जेक्टिव है, चाहे कृष्ण को मिला हो, चाहे और किसी को मिला हो--सामने रखकर बताया नहीं जा सकता है दूसरों के सामने, कि यह मुझे मिल गया है। और तुम पहचान लो कि इसे पाकर मैं आनंदित हो गया हूं। कृष्ण इतना ही कह सकते हैं कि जो मुझे मिला है, उसके विषय में मैं सबसे बात कर सकता हूं। वह मिलना तो बहुत आंतरिक है, और इतना आंतरिक है कि दूसरे व्यक्ति के लिए अर्जित हो नहीं पाता कभी भी। इसलिए धर्म की दुनिया में, विज्ञान का अर्थ काम नहीं करेगा। धर्म की दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को खोज से गुजरना ही पड़ेगा--अनिवार्य है खोज से गुजरना। और कृष्ण जिस तरह पहुंचते हैं, उसी तरह उसे भी पहुंचना पड़ेगा, अपनी ही खोज से। कृष्ण को जो मिला है, या कृष्ण जो कह रहे हैं तो बुद्ध को कोई जरूरत नहीं खोजन की--कृष्ण को मिल गया है, बुद्ध उसको पकड़ लें, मामला खत्म हो गया। लेकिन बुद्ध कितना ही पकड़ते हैं, उससे कुछ हल नहीं होता। बुद्ध को खोजना पड़ता है। बुद्ध को मिल गया है, तो महावीर को भी खोजने की जरूरत नहीं है--बुद्ध को पकड़ लें, बात खत्म हो जाती है। लेकिन नहीं, जितने लोगों को चरम सत्य मिला है, वह व्यक्तिगत खोज की निष्पत्ति है, सामूहिक खोज की निष्पत्ति चरम सत्य नहीं है!

दो तरह के सत्य हैं--एक को हम आब्जेक्टिव ट्रुथ कहें, जो हमसे बाहर है। उसे तो विज्ञान खोज रहा है। और दूसरा वह जो हमारे भीतर है, उसे धर्म खोज रहा है। विज्ञान के लिए आप कहते हैं कि बिलकुल ठीक है, डुप्लीकेशन बिलकुल बेमानी है। एब्सर्ड है, कोई जरूरत नहीं है। हम आगे खोजते चले जाएंगे। इसलिए विज्ञान में तो एडीशन होता है और धर्म में कभी एडीशन नहीं होता। धर्म का आपको फिर से रिवीलेशन होता है। और वह रिवीलेशन उतना ही ओरिजनल है, जितना कभी किसी को हुआ हो, वह डुप्लीकेट नहीं है। क्योंकि

आप किसी को मानकर कभी कहां पहुंचते नहीं है। आप खोजते हैं, खोजते हैं और पहुंचते हैं वह जो पहुंचना है, उतना आंतरिक है कि यह कभी सोशल प्रापर्टी बन नहीं पाता और बन ही नहीं सकता।

मेरा कहना कुल इतना ही है कि हम उसको सोशल प्रापर्टी बनाकर नुकसान में पड़ें हैं। पुराने शिक्षकों ने यह कह दिया है कि एक दफा मिल गया वेद को सत्य, तो बाकी लोगों का काम है कि वेद को मान लें। मोहम्मद का मिल गया था, फिर बाकी लोगों का काम है कि मोहम्मद को मान लें। मेरा कहना यही है किसी को भी सत्य मिल गया हो, बाकी लोगों के मानने से नहीं मिल जाएगा। बाकी लोगों को भी उस प्रक्रिया से खोजने निकलना ही पड़ेगा, जो एकदम आंतरिक और व्यक्तिगत है, इसका किसी से ट्रांसफरेबल नहीं है ट्रुथ।

चरम सत्य कभी हस्तांरित नहीं होती है। न कभी हो सकता है। उसका कोई उपाय नहीं है। अगर मुझे मिल गया है, तो मैं लाख उपाय करूं तो आपको नहीं दे सकता हूं। या आपको मिल गया है तो आप मुझे नहीं दे सकते। अगर यही संभव होता, तो दुनिया में एक धर्म का बच जाता, जरूरत न थी पचास धर्मों की। और दुनिया के सारे लोगों ने जैसे विज्ञान को स्वीकार कर लिया है--क्योंकि कोई सवाल नहीं झगड़े का कि हिंदू की केमिस्ट्री अलग हो, मुसलमान की केमिस्ट्री अलग हो। केमिस्ट्री के बाबत हम राजी हो जाएंगे, चाहे कोई हिंदू हो, चाहे कोई मुसलमान हो। एक एक्सपेरीमेंट करते हैं, आब्जेक्ट ट्रुथ का, हम राजी हो जाते हैं। लेकिन धर्म की खोज व्यक्तिगत है।

तो रिलीजन के साथ उपद्रव यह है कि ट्रुथ सब्जेक्टिव है, इनर है।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--नहीं यह मैं नहीं कहता। हो ही नहीं सकता। है तो एक ही, दो नहीं हैं, क्योंकि दो कैसे हो सकते हैं? और एक भी नहीं हो सकता है, इन अर्थ में कि हम सब एक से राजी हो जाएं। लेकिन जब भी कोई व्यक्ति उपलब्ध होता है, तो उसी को जान लेता है जिसे बहुत बार जाना गया हो। लेकिन फिर भी यह डुप्लीकेशन नहीं है। फिर भी हर व्यक्ति के लिए अनुभव बिलकुल ओरिजनल है। क्योंकि इसके लिए बिलकुल नया हैं, और किसी के हाथ से नहीं मिला है। इसलिए धर्म के अनुभव से उपलब्धि हमेशा ट्रांसपरेंट रहेगी, वह कभी पुरानी नहीं पड़ेगी। जब आपको होगा, तब ऐसा ही होगा, जैसे पहली दफा आपको हो रहा है और किसी को नहीं हुआ। आपके लिए यह बिलकुल पहली दफा है। प्रश्न--तो आपको कार्य क्षेत्र बड़ा सुनिश्चित हुआ इस माने में कि कुछ विचारों की उथल-पुथल पैदा करके आपके साथ हो जाएंगे। उसके बाद जो नयी संस्कृति, नयी धारणा होगी उसी पर

ओशो--मैं उससे बहुत उत्सुक नहीं हूं। मैं उत्सुक इसलिए नहीं हूं कि मेरा मानना यह है कि हम बनावट की, रूप रेखा की, पाजिटिव प्रोग्रेम की जो बहुत चिंता करते हैं, वह इसीलिए कि समाज के पास थिंकिंग बहुत कम है। समाज के पास विचार की शक्ति अगर तीव्र हो जाए, तो उस विचार से सहज ही क्या करना है, निकलना शुरू होता है। अगर समाज के पास विचार की शक्ति ज्यादा न हो, तो प्रोग्रेम देना पड़ता है। कोई आदमी यह करेगा कि

यह-यह करो, और समाज करेगा। अब तक यही हुआ है। आज तक वही हुआ है कि एक आदमी तय करता है, दस आदमी तय करते हैं कि यह करने योग्य है, हमें फिकर यह करनी चाहिए कि वह विचार की शक्ति ज्यादा न हो, तो प्रोग्रेम देना पड़ता है। कोई आदमी तय करेगा कि यह-यह करो, और समाज करेगा। अब तक यही हुआ है। अब तक यही हुआ है कि एक आदमी तय करता है, दस आदमी तय लें। और एक-एक चीज संदिग्ध हो जाए, एक-एक चीज के संबंध में चिंतन शुरू हो जाए। मैं भी संदिग्ध रहूं। मैं कोई विश्वास का आधार बन जाऊं यह सवाल नहीं है। मैं भी संदिग्ध रहूं, चिंतन चले, विचार चले, लोग सोचें। सोचने की प्रक्रिया से प्रत्येक के भीतर चेतना उस जगह आनी शुरू होती है, जहां से दर्शन संभव है, जहां से चीजें दिखाई देना शुरू हो जाती है और यह दिखाई देना पाजिटिव प्रोग्रेम को जन्म देता है।

प्रश्न--क्या आपको भारत में नव चिंतन के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं--राजनीति में और समाज में?

ओशो--अभी तो नहीं दिखाई दे रहे हैं। नहीं, कभी भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। यहां सब रिप्लसमेंट चल रहा है। मजा यह है कि भारत के वामपंथी से भी मैं हुत परिचित हूं। फिर भी उसके भीतर अराजकता चित नहीं है। एक विद्रोह है, बगावत है। उसमें तोड़-फोड़ भी है, जल्दी बाजी भी है, और उसको लगता है कि यह गलत है, वह गलत है, लेकिन मैं सही हूं और गलत की जगह इसे बैठा दूं; यह आग्रह परिपूर्ण है। यानी बहुत नया नहीं है वह। जब तक यह आग्रह है कि गुरु बदल कर मैं गुरु बन जाऊं, तब तक गुरुडम से मेरा विरोध नहीं है। गुरु से विरोध हो सकता है। यह गुरु गलत है, दूसरा गुरु चाहिए। मैं चाहता हूं, गुरुडम गलत है। उसमें मार्क्स भी गलत हैं और महावीर भी गलत हैं।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--मेरा मानना है कि आदमी के अनेक जन्म हैं, और सारे जन्मों का सार, निचोड़ स्मृति का हिस्सा है। वह कभी मिटता नहीं है। और उसका जो पूरा का पूरा कलेक्टिव अनुभव है, वह आपके भीतर आज भी मौजूद है। ध्यान के रास्ते हैं कि अपने सारे पुराने अनुभवों में उन्हें उतार सकते हैं। अपनी पुरानी पूरी स्मृतियों को जगा सकते हैं, जो आपने जन्मों-जन्मों में कभी किए हैं, और उस सारे अंश का आज आप उपयोग कर सकते हैं। इस तरह के ध्यान के प्रयोग का नाम जाति स्मरण है। बुद्ध और महावीर इस पर बहुत मेहनत की है। बल्कि उन दोनों का दान ही वही है, और कोई खास दान नहीं है--रिमेंबरिंग आफ द पास्ट लाइफ।

प्रश्न--वे दोनों परिणीत थे?

ओशो--महावीर तो परिणीत नहीं थे। बुद्ध परिणीत थे। महावीर की सारी चिंतना जीवन के ब्रह्मचर्य के विषय में थी और पिछले जन्मों के अनुभव से संबंधित थी। मेरी भी इधर निरंतर चेष्टा पीछे के जन्मों में उतरने की रही है। और निश्चित ही किसी के भी उतरने की संभावना है। थोड़े से प्रयोग करने की बात है कि कोई भी व्यक्ति पिछले जन्मों में उतर जाए। इस

जन्म में मेरा सेक्स का कोई अनुभव नहीं है। कोई जरूरत भी ही है। उस तरफ ही सारी मेहनत करने में लगा हुआ हूं। मेरी सारी भीतरी चेष्टा उसी तरफ है।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--हां, बिलकुल ही। अब यह तो लंबी बात करनी पड़ेगी और यह बात ऐसी होगी कि आपके लिए सिर्फ विश्वास का कारण बनेगी, इसलिए बेमानी होगी, मैं कितना भी कहूं।

वह तो जैसे ही आप अपने भीतर जाएंगे, आप अपनी उस स्मृति को आज की स्मृति की मेमोरी में उतरेंगे, तो आपके भीतर की परतें जगनी शुरू हो जाएंगी अनिवार्य। जो भी आदमी भीतर जाएगा, जितना भीतर प्रवेश करेगा, जितना अनकांशस में उतरेगा, उतनी स्मृति उठनी शुरू हो जाएगी, लेकिन पहले बिलकुल के मानी होगी। क्योंकि पहले समझना मुश्किल होगा कि ये क्या हैं?

प्रश्न--यानी ईश्वर की आस्था को आप चुनौती दे रहे हैं?

ओशो--आस्था पर चुनौती है, ईश्वर पर चुनौती नहीं है। आस्था पर सबकी चुनौती है। मैं नहीं कहता आपसे कि आप आस्था करें कि पिछले जन्म हैं।

प्रश्न--आप पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं?

ओशो--विश्वास बिलकुल नहीं करता हूं, मैं अपने अनुभव की बात कर रहा हूं। मेरी बात आप नहीं समझे, विश्वास से मेरी बिलकुल दुश्मनी है। जब तक मुझे अनुभव नहीं हुआ, मैंने विश्वास नहीं किया। जब तक मुझे नहीं हुआ, तब तक मैं जानने को राजी नहीं हुआ। जिस दिन मुझे अनुभव हुआ उस दिन से मैं मानता हूं।

प्रश्न--आपको सब्जेक्टिव रियलाइजेशन हुआ कि पिछले जन्म का पता चला, तो पुनर्जन्म पर विश्वास हुआ?

ओशो--विश्वास नहीं, अभी मेरा जानना है। वह विश्वास मैं नहीं करना चाहता। मेरा मतलब समझेगा। बिलीव्ह का सवाल ही नहीं है, आई नो। आई हैव कम टु नो इट सो, नाऊ इट इज नाट बिलीव्ह विथ मी, इट इज ए डर्टेन नालेज। अगर आप विश्वास करते हैं और नहीं जानते हैं--नहीं जानते हैं, तो विश्वास होता है। अज्ञान में ही विश्वास है। ज्ञान के साथ विश्वास का कोई संबंध नहीं है। जिस दिन मुझे पता नहीं था, मैं विश्वास कर सकता था। वह विश्वास होता, पर वह मैंने नहीं किया।

प्रश्न--मेरा प्रश्न यह है कि आपको जब ज्ञान हो गया, तो फिर ईश्वर की सत्ता से आपका विरोध क्यों है?

ओशो--सत्ता से कहां विरोध है? सिर्फ विश्वास से है। आप मेरा फर्क नहीं समझ पा रहे हैं। मैं ईश्वर के विरोध में नहीं हूं। मुझसे ज्यादा ईश्वर के पक्ष में आदमी खोजना मुश्किल है। मैं ईश्वर की आस्था के विरोध में हूं। मेरा कहना इसलिए विरोध में है कि आस्थावान कभी ईश्वर को जान ही नहीं सकता।

प्रश्न--आप तो शब्दों की बारीकी बात कर रहे हैं?

ओशो--नहीं, नहीं, बारीकी शब्दों की नहीं बता रहा हूं। बिलकुल ही डर्िस्टिक्ट अनुभव की बात है दोनों की। ईश्वर पर विश्वास करने वाला आदमी ईश्वर को कभी नहीं जान सकता; क्योंकि विश्वास करने वाला कुछ जान ही हनीं सकता। विश्वास करनेवाला जानने की चेष्टा ही नहीं करता।

प्रश्न--ज्ञान के बाद नहीं?

ज्ञान के बाद तो विश्वास का सवाल ही हनीं है।

एक घटना मुझे याद आती है। एक जर्मन विचारक अरविंद से मिलने आया। उसने अरविंद से पूछा, इू यू बिलीव्ह इन गाड? अरविंद ने कहा, नो अब्सोलूटली नो। वह तो बहुत घबरा गया। उसने आश्चर्य से पूछा कि आप ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं? मैं तो यही सोचकर आया था कि ईश्वर को जाननेवाले के पास जा रहा हूं। तो अरविंद ने कहा, कि तुम पूछते ही गलत हो! तुम्हें पूछना चाहिए, यू यू नो गाड, पर तुम पूछते हो, इू यू बिलीव्ह? आई नो, बट आई डोंट बिलीव्ह।

असल में नोइंग का बिलीव्हिग से कोई संबंध हनीं है। उल्टी बातें हैं। हमेशा नाट नोइंग में बिलीव्हिग आती है। जब हम नहीं जानते हैं तो, बिलीव्ह करते हैं। जब मानते हैं तो बिलीव्ह का सवाल ही नहीं है। मैं इसमें बिलीव्ह थोड़े ही करता हूं कि वृक्ष है। मैं इसमें बिलीव्ह करता हूं कि भूत है। वृक्ष है, यह मैं जानता हूं। यह बात खत्म हो गयी। इसमें बिलीव्ह करने की कोई जरूरत नहीं है। सूरज है, यह मैं मानता हूं। इसमें बिलीव्ह करने की कोई जरूरत नहीं है। सूरज और वृक्ष मालूम हो रहे हैं कि हैं। जिस दिन आप भीतर के अनुभव में उतरते हैं, परमात्मा इस ड्रीमलैंड मालूम होती हैं। ईश्वर विरोध में मैं नहीं हूं, धर्म विरोधी मैं नहीं हूं। मेरा कहना यह है कि धर्म पर जो आस्था का आवरण है, उसका मैं विरोधी हूं। ईश्वर का, आस्था का जो भाव है, उसका मैं विरोधी हूं।

प्रश्न--आप जो पुराने जन्म से सेक्स की बातें समझकर अभी बोल रहे हैं, तो वह तो बहुत पुरानी हुई। पर अभी आप माडर्न इंटरप्रीटेशन लाकर क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए यह बताते हैं।

ओशो--समझा, समझा। अनुभव असल में कभी पुराना नहीं होता है, आपने चाहे पिछले जन्म में सेक्स जाना हो, चाहे कल रात जाना हो, चाहे आज जाना हो। और जब स्मृति जगती है, तो वह उस वक्त पुरानी जैसी नहीं होती है। जब स्मृति जगती है, अब आप भीतर प्रवेश करते हैं, तो जो स्मृति आपको अनुभव होती है, वह इतनी ही प्रेजेंट (वर्तमान) में होती है। स्मृति तो पास्ट (अतित) की होती है। जब होती है, प्रेजेंट में होती है, अभी होगी, अभी होगी।

प्रश्न--और वह कैसे होना चाहिए, यह आप इंटरप्रीट कर रहे हैं?

ओशो--यह तो सवाल ठीक ही है। अनुभव जब हमें होगा और जब हम बात करेंगे, तो इंटरप्रीटेशन शुरू होगा। मैंने क्या जाना, उसको तो कहने का कोई उपाय नहीं है। सिर्फ व्याख्या ही कर सकता हूं, तो भी हम जानते हैं। आपने प्रेम जाना है, फिर आप किसी को

समझाएंगे। तब आप प्रेम के संबंध में किसी को समझाएंगे, तो आप व्याख्या ही कर रहे हैं। आप विचार ही कर रहे हैं। जो आपने जाना है, वह आपके विचार के पीछे खड़ा है; लेकिन जब आप किसी से कह रहे हैं, तो आप व्याख्या ही कर रहे हैं। अपने ही अनुभव की व्याख्या आप कर रहे हैं, इस भाषा में, इस स्थिति में, कि दूसरा समझ सके। और मेरा कहना सिर्फ इतना है कि मेरी व्याख्या को आप अगर पकड़ लेंगे, तो आप अनुभव को उपलब्ध नहीं होंगे। मेरी व्याख्या अगर आपको सिर्फ इतनी प्रेरणा दे सके, इतनी उथल-पुथल दे सके कि आप भी अनुभव की दिशा में जाना शुरू करें, तो कुछ हो सकेगा। तो मेरी व्याख्या अगर आपके विश्वास का आधार बन जाती है, तो आपकी मैं हत्या कर रहा हूं, आपको मैं मार डाल रहा हूं। क्योंकि आप इसी व्याख्या को प्रेम समझ लेंगे जो कि प्रेम नहीं है। प्रेम कुछ और ही बात है और व्याख्या ही अलग बात है।

प्रश्न--आप जब यह कह रहे हैं कि इस तरह करना चाहिए, इस तरह होना चाहिए, तो आप भी लोगों को गाइड ही कर रहे हैं।

ओशो--नहीं, बिलकुल नहीं; कम्युनिकेशन, जो मेरे खयाल में हैं, मेरे अनुभव में हैं। गाइड बिलकुल नहीं कर रहा हूं।

प्रश्न--आपका अनुभव तो पुराना ही था?

ओशो--मैं कहता हूं, अनुभव पुराना या नया होता ही नहीं। इसको अगर ठीक से समझेंगे, तो पता चलेगा। अनुभव सिर्फ अनुभव है। और जिस अनुभव से आप गुजर गए हैं, वह सदा नया है। अनुभव कभी पुराना नहीं होता है; क्योंकि वह आपके कांशसनेस का हिस्सा हो गया है। वह कभी पुराना नहीं है। वह कहीं आप से दूर नहीं रह गया है। जो आपने जान लिया है, वह आपका हिस्सा हो गया है। वह आप ही हैं। आप अपने जानने का एक जोड़ हैं। वह सब का सब आपके भीतर मौजूद है, बिलकुल इतना ही ताजा और नया, जितना पहले क्षण में था। वह कहीं पुराना हुआ नहीं था। अनुभव की खूबी यह है कि वह बासी नहीं होता, पुराना नहीं होता। सदा ताजा है। और जब मैं कह रहा हूं आपसे, तब मैं आपका गाइड नहीं हूं। और जब मैं आपसे कह रहा हूं, तो इस खयाल से नहीं कह रहा हूं कि आप मेरी बात मानें। सिर्फ इसी खयाल से कह रहा हूं कि जो मुझे लगा है, वह मैं आपसे निवेदन कर देता हूं, कम्युनिकेट कर देता हूं और उसका कारण उसका मेरा अपना आंतरिक है। जब भी कोई अनुभव किसी को मिल जाए, तो उसके साथ ही यह दायित्व भी मिल जाता है कि उसको साझीदार बना ले।

प्रश्न--पुराने जमाने में यह प्रेम की बातें कम थीं और मैरिज का तो अरेंजमेंट होता था, और ऐसा विवाह करने के बाद भी परिवार बड़े परिवार में दबे हुए और कंट्रोल में रहते थे, और बहुत से सामाजिक तथा अन्य बंधन थे। तो इस तरह के लोग इसे समझ भी नहीं सकते थे।-- तो अब तो वही जमाने।

ओशो--बिलकुल ठीक कहते हैं कि आप। हमारे सारे ढांचे बांधते हैं, लेकिन कोई भी अगर प्रयोग करना चाहे, तो कोई ढांचा बांधता नहीं है। आज भी हम सब एक ही समाज के ढांचे

में जीते हैं, फिर भी हमारे अनुभव अलग-अगल होते हैं, और हमारे बीच भी कोई आदमी डी. एच. लारेंस का अनुभव करता है। सेक्स पर गहरे से गहरे प्रयोग करता है, जैसे कि साधारण आदमी नहीं करता। हमारे बीच भी, हमारे समाज में भी कोई आदमी सेक्स पर गहरे प्रयोग करता है। कोई आदमी रंगों पर गहरे प्रयोग करता है, तो पेंटर हो जाता है। हम भी रंग देते हैं, लेकिन हम सब पेंटर नहीं हैं। और शायद जब हम देखते हैं हरा रंग, तो हमें हरा रंग ही दिखाई पड़ता है। पर जब एक पेंटर देखता है तो एक हरे में पचास भेद उसे दिखाई पड़ते हैं। उसके हरे का अनुभव हमारे हरे के अनुभव से बहुत भिन्न है। उसके हरे का बोध भी हमसे बहुत भिन्न है। उसके हरे पैनीट्रेशन भी हमसे बहुत भिन्न है। वह जैसा हरे को जानता है, हम नहीं जानते हैं, क्योंकि हम हरे के पास से सिर्फ गुजर जाते हैं। वह हमारा जानना नहीं है। हरे में न हम कभी डूबे हैं, न कभी जिए हैं, न कोई प्रयास किया है कि हम हरे की गहरी अनुभूति में उतर जाए। रंग से हमारा कहीं वास्ता नहीं, जैसा कि कभी कोई चित्रकार उतरता है। इसी तरह सेक्स से भी हमारा कोई वास्ता नहीं है। कभी कोई साधक उतरता है। सेक्स को भी कोई साधना की तरह ले, तभी उतरता है, नहीं तो नहीं उतरता है।

प्रश्न--भारत के धर्म निरपेक्ष हो जाने पर क्या विचार क्रांति में कोई मदद मिलेगी?

प्रश्न--भारत के धर्मनिरपेक्ष हो जाने पर क्या विचार क्रांति में कोई मदद मिलेगी?

ओशो--अगर ऐसा है तो धर्म निरपेक्ष राज्य बुरा नहीं है। धर्म निरपेक्षता की गलती नहीं है, क्योंकि राज्य धर्म निरपेक्ष नहीं है। यानी मेरे हिसाब से राज्य को किसी को हिंदू, मुसलमान नहीं मानना चाहिए, अगर धर्म निरपेक्ष है। उसे तो व्यक्ति के हित और सुख के लिए सोचना चाहिए, अगर एक स्त्री के हित में एक पति है, और एक पति के हित में एक स्त्री है, तो सवाल हिंदू, मुसलमान का नहीं है। यह बिलकुल बेमानी बात है। कानून स्त्री के लिए होना चाहिए। भारत ठीक धर्म निरपेक्ष नहीं है। वह धर्मों को स्वीकार करके चलता है, तो मुल्क धर्म निरपेक्ष नहीं है। धर्म निरपेक्ष की आड़ में ढेर बेईमानी है। धर्म निरपेक्ष कैसे है? वह कहे यह मुसलमान भी अलग नहीं है, यह हिंदू भी अलग नहीं है। रिकग्नीशन भी देने की जरूरत नहीं है। आदमी का रिकग्नीशन होना चाहिए कि यह हमारा नागरिक है, वह भी हमारा नागरिक है। हमें दोनों के हित में सोचना चाहिए। नहीं, अभी हमारा मुल्क धर्म निरपेक्ष नहीं हैं। धर्म निरपेक्ष की आड़ में ढेर बेईमानी है।

मेरा कहना आपके लिए विश्वास ही होगा। हां, मैं तो कहता हूं कि हां लेकिन आपके लिए विश्वास ही होगा। इसलिए मेरी बात मानने की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्न--आपने जो पुनर्जन्म की बातें की हैं, तो आपको भगवान बना देने की स्थिति आएगी और लोग समझेंगे कि वह तो बहुत बड़े आदमी हैं, अपने पूर्वजन्म की बातें समझते हैं।

ओशो--आप अपने पेपर में यह भी देना कि यह बड़े आदमी नहीं है, और भगवान भी नहीं है और हर आदमी को सावधान रहना चाहिए कि ऐसी भूल न हो। देना चाहिए।

मैं लड़ाई जारी रखूंगा, कामनसेंड की ही तो लड़ाई है सारी की सारी। व लड़ाई जारी रखूंगा।

प्रश्न--जो मत परिवर्तन में विश्वास रखते हैं ऐसे धर्म, और जो मत की संस्था पर विश्वास रखते हैं ऐसे धर्म, इन दोनों में कैसे संबंध होने चाहिए, क्योंकि एक ही आबादी दूसरे से न बढ़ जाए और दूसरे की उससे न बढ़ जाए।

ओशो--उसकी चिंता राज्य को नहीं करनी चाहिए, इन दोनों के विचारकों को करनी चाहिए। इसका राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रश्न--बहुत विचारक बेईमान हैं।

ओशो--तो दूसरे को बेईमान होने की तैयारी करनी चाहिए, और क्या करेंगे आप? सवाल यह है कि जो ईसाइयत है, वह कन्वर्ट करने में लगी है। और राज्य कहता है कि हम किसी को स्वीकार नहीं करते हैं कि कौन ईसाई है, कौन मुसलमान है। लेकिन यह हक तो हर आदमी को है कि अपनी बात किसी को, दूसरे को समझाए। इसे तो राज्य नहीं रोक सकता। अगर दूसरा आदमी राजी होता है ईसाई होने को, तो राज्य नहीं रोक सकता। अगर दूसरा धर्म कहता है कि इस भांति हमारी संख्या कम होती है, तो उसका कारण तुम्हारा न तो स्थिरता का सिद्धांत है कि उसे तुम बदलो, या कन्वर्ट करो। अगर तुम सोचते हो कि तुम्हारा सिद्धांत ठीक है, तो संख्या कम करने को राजी रहो। इसमें झगड़ा क्या है? लेकिन राज्य की ओर से बाधा देना गलत है। अगर राज्य किसी तरह रुकावट डालता है ईसाई को कि वह किसी को ईसाई बनाने से रोके, तो फिर राज्य ठीक अर्थों में धर्म निरपेक्ष नहीं है।

प्रश्न--अभी जो संघर्ष की बात विचार के तल पर आप कह रहे हैं तो वह तो पकड़ ली जाएगी न? और संघर्ष होगा तथा फेमिली में भी संघर्ष होगा?

ओशो--करना ही पड़ेगा। फेमिली हमारी बहुत जड़ता का हिस्सा है। यहां संघर्ष जरी है और बेटा जब आप से लड़ना बंद कर देता है विचार के तल पर, तो समाज गतिमान नहीं होता है।

वह बाप यही करता है, लेकिन बेटे को डिक्टेशन लेना बंद करना पड़ेगा। क्योंकि बेटा बिलकुल आदमियत खो रहा है। तो मुश्किल है। बेटे को मैं तैयार करने की कोशिश में लगता हूं कि वह बेटा विक्टेशन लेना बंद करे।

प्रश्न--क्या आप इससे आगाह हैं कि वैचारिक स्थिरता अगर आ गयी तो हमारे नौजवान पाश्चात्य विचारों में दीक्षित हो जाएंगे?

ओशो--मैं मानता ही यह हूं कि अब दुनिया पश्चिम और पूरब में बटी नहीं रह सकती। यह धारणा ही गलत है। अब दुनिया बटी नहीं रह सकती। अब दुनिया एक होगी और इस एक होने में कुछ पूरब का पश्चिम में जाएगा, कुछ पश्चिम का पूरब में आएगा।

प्रश्न--आप जो अराजकता और इस प्रकार की बातें करते हैं, इसमें जो मर्डर होते हैं, तो इसे बंद करना चाहिए न?

ओशो--मेरा मनाना यह है कि यह हंगामा, यह मर्डर, यह इलूजन जो है, यह बहुत दिनों तक समाज को सप्रेस करने या रोकने का परिणाम है। यह अराजकता का परिणाम नहीं है। जैसे एक आदमी को हम बीस दिन खाना न दे, उपवास पर रख दें। और फिर कहें कि

इसको खाने के लिए मुक्त करो। और वह आदमी किचन में पहुंचकर एकदम खाने पर टूट पड़े, और बर्तन तोड़ दे, और पटक दें, और खाए--इतना खाए कि बेहोश होकर गिर जाए, तो आप कहेंगे कि देखो, यह खाने का कैसा दुष्परिणाम हुआ! मैं कहूंगा, यह खाने का दुष्परिणाम नहीं है, यह बीस दिन के उपवासों का परिणाम है। जो तोड़-फोड़ होती है, वह अराजक चित्त का परिणाम नहीं है। वह अराजक चित्त के विपरीत, जो हजारों सालों का परंपरागत चित्त है, उसमें जो रुकावटें लगायी थी, उसका परिणाम है। यह होगा संक्रमण के काल में। एक ट्रांसफार्मेशन का पीरियड होगा। यह होगा।

लेकिन अगर दुनिया राजी हो गयी, धीरे-धीरे मनुष्य का चित्त इस बात के लिए राजी हुआ है कि बहुत बंधन, बहुत नियम, बहुत रूढ़ियां नहीं चाहिए। तो एकदम तोड़-फोड़ मिट जानेवाली है, क्योंकि वह उनकी प्रतिक्रिया में पैदा होती हैं, वह सीधी पैदा होती हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि पश्चिम में जो इतने जोर से सेक्सुअलिटी बढ़ी है, वह क्रिश्चियानिट के कारण बढ़ी है, क्योंकि क्रिश्चियनिटी न सेक्स के खिलाफ इतना सख्त रुख लिया कि उसको आप मान लिया।

प्रश्न--अभी सेक्स क्या होमोसेक्सुअलिटी तक पहुंचेगी?

ओशो--मैं भी मानता हूं, गलत नहीं है। अगर किसी आदमी को होमोसेक्सुअलिटी से सुख मिलता हो, तो समाज को रोकने का हम क्या है? और अगर दो आदमी राजी हों, तो हम क्या है किसी को रोकने का?

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--आदमी प्रकृति की हर चीज में विकास कर रहा है। जहां तक प्रकृति का, बायोलाजी का संबंध है, सेक्स प्रिपरेशन के लिए, लेकिन आदमी हर चीज के कल्चर ले आया है, और लाना चाहिए, और उसने सेक्स को प्लेजर भी बनाया है। यह आदमी की खूबी है, जानवर की खूबी नहीं है। आर्टीफीशियल नहीं है। क्रिएटेड नहीं है यह। यह एव्यूलूशन है, यह विकास है। आदमी के माइंड ने सेक्स की बायोलाजी ने मुक्ति पायी है और ऊपर उठाया है सेक्स को। जानवर भी खाना खा रहा है। आदमी का विकास है इसमें। तो ईसाई मिशनरियों ने इतना काम किया है कि हमारे मान्यता के पीछे पड़ गए हैं। क्योंकि हम परिचित नहीं होते हैं। हम तो क्रिश्चियनिटी से समझते हैं बाइबिल। जैसे कोई समझ ले कि हिंदू धर्म का मतलब है वेद। तो है क्या वेद में? बाइबिल तो ओरिजनल है। लेकिन पिछले दो हजार सालों में इतनी साधना की है क्रिश्चियनिटी ने, जिसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते।

प्रश्न--क्रिश्चियनिटी के पीछे तो ईसा खड़े हैं न?

ओशो--ईसा का बहुत विज्ञान है और ईसा महा साधकों में से है। वह साधारण साधक नहीं हैं। बल्कि मेरा मानना है कि वे न केवल साधक हैं बल्कि क्रांतिकारी भी हैं।

जैसे मैं एक विचार फैलाता हूं, जिससे तुमको डर है कि नुकसान होगा। तो तुम मेरे खिलाफ विचार फैलाओ, इसकी स्वतंत्रता तुम्हें भी है। राज्य न मुझे रोके, न तुम्हें रोके। यह राज्य

का सवाल नहीं है। निरपेक्षता का मतलब यह होगा; नहीं तो बदमाशी है। नहीं तो जैसा तुम कहते हो, हो सकता है कि ईसाई पालिटिक्स फैलाए, यह बिलकुल पालिटिक्स है। लेकिन यह हिंदू की है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ती। यह जनसंघी की है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ती। और ईसाई के साथ है, लेकिन तुम नुकसान पहुंचा सकते हो कि तुम्हारी मेजारिटी है। तुम मिशनरी को रोक सकते हो, और अभी दर्ुव्यवहार हुआ है, ईसाई के साथ हो रहा है। हम भी तो पालिटिक्स कर सकते हैं, कर रहे हैं पूरी तरह से। मेरा कहना है, राज्य न हिंदू है, न ईसाई है, न जैन है, न नास्तिक है--राज्य को इससे कोई प्रयोजन नहीं है। निरपेक्षता का यही मतलब है। राज्य कहे कि जो हिंदू को ठीक लगता है, वह समझाए। जो मुसलमान को ठीक लगता है, वह समझाए। अगर मुसलमान की बात ठीक समझ कर हिंदू मुसलमान हो जाए, तो हो जाए। राज्य को क्या लेना-देना है? राज्य इस मामले में कोई प्रयोजन नहीं रखता। मगर हिंदू होने आता है, हिंदू मेजारिटी है, तो हिंदू अपनी राजनीति चला सकता है।

प्रश्न--तो जो सिस्टम रिलीजन प्रचारित हो रहा है, वह तो बिलीव्ह पर आधारित है?

ओशो--हो रहा है। प्रचारित इसलिए तुम भी बिलीव्ह पर खड़े थे और तुमने हिंदुस्तान को बिलीव्ह सिखायी थी। ईसाइयत उसकी ही जगह बिलीव्ह सिखा रहा हो, तुम्हारे हाथ है इसमें सवाल यह है कि तुम पूरी शक्ति लगाओ। इसमें कसूर किसका है? तुमने शूद्र के साथ जो दर्ुव्यवहार किया है, वह शूद्र भी ईसाई हुआ जा रहा है। इसमें कारण तुम्हारे दर्ुव्यवहार। ब्राह्मण क्यों नहीं ईसाई हो रहा है? अगर शक्ति से ही हो रहा है, तो ब्राह्मण कोई ईसाई होता नहीं दिखाई पड़ता, जैन कोई ईसाई नहीं होता। होता है शूद्र और आदिवासी! इसके साथ दर्ुव्यवहार किया गया है हजारों साल से । मैं मानता हूं, वह नासमझ है, अगर ईसाई न हो जाए।

तुमको गलत दिखता है तो तुमको प्रचार करने का हक है, प्रचार करो। यानी मेरा कहना है, इसमें राज्य का इंटरफियरेंस नहीं चाहिए किसी भी तल पर। जैसे कि मैं हूं, मैं अकेला आदमी हूं। मैं जो कह रहा हूं, सारा मुल्क यह तय करे कि भई इस आदमी को बोलने नहीं देना है, उसके ऊपर दबाव डालो, इसे रोको,। आखिर अदालत में ले जाने का प्रयोजन क्या है? प्रयोजन यह है कि किसी तरह मुझ पर दबाव पड़े और मैं बोलना बंद करूं। राज्य को निपट इनकार करना चाहिए। अगर राज्य धर्म निरपेक्ष है, तो इसका मतलब यह है कि हर आदमी को बोलने का हक है जब तक कि आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचता है, आपकी जेब नहीं काटता है, आपको छुरा नहीं भोंकता है। बोलने का तो हक है। अगर गलत लगता है, तो आपको बोलकर उत्तर देने का हक है। बात खत्म होती है, इसके आगे क्या सवाल है?

प्रश्न--अस्पष्ट है

ओशो--यह मानना नहीं है। हम सब जानने का प्रयास कर रहे हैं। एक आदमी ने कहा, हम देखें। मानकर नहीं चल पड़े हैं। हम देख रहे हैं, एक आदमी ने कहा है कि उस झाड़ के पीछे

सुंदर फूल खिला है। हम मान नहीं लेते हैं कि वहां फूल है, लेकिन हम जाकर देखना चाहते हैं हम जाकर देखते हैं, फूल है या नहीं। माननेवाला कहता है कि जाने वाने की कोई जरूरत नहीं है। पूर्ण श्रद्धा रखो तो फूल मिलेगा। पूर्ण श्रद्धा में खतरा है कि फूल न हो, तो भी मिल जाए। मन की दुनिया का मामला ऐसा है कि वहां जो नहीं है, वह भी मिल जाए, और यही होता रहा है हमेशा। मेरा कहना है कि मेरी बात मानने की जरूरत नहीं है, विश्वास करने की जरूरत नहीं है। इतना ही पर्याप्त है कि अगर तुम समझते हो कि यह आदमी कहता है, तो हम जाकर देख लें। अगर फूल की तलाश करना है, तो जाकर देख लें, होगा तो दिख जाएगा; नहीं होगा, नहीं दिखेगा।

प्रश्न--श्री अरविंद ने सरेंडर करने को ही कहा था न?

ओशो--हां, हां, साधना इनकी भी है। सरेंडर साधारण बात नहीं है। लोग तो समझ लेते हैं कि साधारण मामला है, सरेंडर कर दिया। तुम सरेंडर हो ही नहीं सकते, जब तब अहंकार है। इसलिए मैं सरेंडर की बातें नहीं करता। मैं कहता हूं, अहंकार को जाने दो, सरेंडर हो जाएगा। तुम्हें करने की जरूरत नहीं है। बहुत ठीक से समझो, तो सरेंडर किया ही हनीं जा सकता। क्योंकि जब तक तुम करनेवाले हो, तो सरेंडर हो कैसे सकता है? तुम्हीं करोगे न? और कल तुम्हारा दिन होगा, तो वापस ले लोगे। और तुम तो हमेशा पीछे मौजूद हो। हमने सरेंडर किया, अब नहीं करना चाहते हैं, खत्म। लेकिन सरेंडर वापस थोड़े ही हो सकता है। वह तो वापस हो सकता है, जब तुम मिट गए हो। वापस लेनेवाला ही नहीं है, तो वापस होगा वहां? वह कभी नहीं हो सकता। एक हिस्सा तुम्हारे भीतर मौजूद रहेगा, जो कहेगा, यह तुमने विश्वास किया है।

मैं एक कमरे में बैठा हूं, जहां अंधेरा है। मैं आंख बंद कर के पक्का विश्वास करता हूं कि उजाला है। लेकिन क्या यह संभव है कि मेरे मन के एक कोने से यह बात खत्म ही हो जाए कि अंधेरा नहीं है? क्योंकि जानता तो मैं अंधेरे को हूं, और मान रहा हूं उजाले को। और जानना मानने से हमेशा बलवान होता है। जाते तुम हो कि अंधेरा है, मानते तुम हो कि उजाला है। मानते रहो, मानते रहो, कितना ही मान लो, एक हिस्से में तुम जानते ही रहोगे कि एक कोने पर अंधेरा था। और उजाला माना है। इसलिए टोटल कभी नहीं होगा सरेंडर। टोटल तो तब होगा, जब तुम जानोगे, जानने से चाहोगे, माने से नहीं। जो मानकर सरेंडर करेगा, उसका तो जानना व्यर्थ ही है। वह चाहे क्रिश्चियनिटी करवाए चाहे हिंदू करवाए, चाहे मुसलमान करवाए। इसलिए मेरा झगड़ा हिंदू, मुसलमान, ईसाई का नहीं है। मेरा झगड़ा तो मानकर करवाने वाले किसी से भी है।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--वह तो सभी कर रहे हैं। हिंदू कैसे फैल गए? राज्य की शक्ति के बिना? बौद्धों को कैसे उखाड़ दिया है? और बौद्ध कैसे फैले? राज्य की शक्ति से फैले। यह तो सवाल ही नहीं है, इसलिए जो क्रिश्चियनिटी कर रही है, वह सवाल थोड़े ही है। बौद्ध फैल गए, क्योंकि राजाओं की शक्ति मिल गयी। फिर हिंदुओं को राजाओं की शक्ति मिल गयी, तो बौद्धों का सफाया कर

दिया गया। जैनों को राजाओं की शक्ति मिल गयी, तो फैल गए। शक्ति नहीं मिली, तब फिर मर गए। अब इसमें कसूर क्या है? यानी मेरा मतलब यह है कि बेवकूफी बिना राजाओं की शक्ति के फैलती नहीं; क्योंकि उसमें खुद को कोई ज्ञान नहीं होता कि उसमें ताकत है--धन की, पद की प्रतिष्ठा की। तो फैल जाती है। तो फिर ईसाई का क्या सवाल है? जो आज हिंदू बना बैठा है, उसका बाप दादा किसी न किसी राजा के प्रभाव में हिंदू बनाया गया था।
प्रश्न--हमको विरोध करना चाहिए उस शक्ति का जो विश्वास प्रचारित कर रही है।
ओशो--सभी शक्तियां विश्वास का प्रचार कर रही है, सभी धर्म कर रहे हैं। वह कम ज्यादा हो सकता है। लड़ाई सभी विश्वासियों की है। और ऐसी लड़ाई कभी नहीं थी, यानी जिस लड़ाई की मैं बात कर रहा हूं। हमेशा लड़ाई ऐसी थी कि एक विश्वास करनेवाले वर्ग की दूसरे विश्वास करनेवाले वर्ग से लड़ाई थी मैं जिस लड़ाई की बात करता हूं, यह कोई वर्ग नहीं है, और समस्त विश्वास करनेवालों से लड़ाई है। यह लड़ाई बिलकुल नए ढंग का मोर्चा है, इसलिए इसमें दिक्कतें भी नए प्रकार की हैं। इसमें कठिनाइयां हैं। हम भी जो कन्वर्ट नहीं कर रहे हैं, किसी को कहने का कि तुम यह हो जाओ, कि तुम वह मत रह जाओ। किंतु अगर उसे हमारी बात समझ में आती है, तो वह न हिंदू रह जाएगा, न मुसलमान रह जाएगा। असली लड़ाई हमारी मुसलमान से भी है, हिंदू से भी है। एक मुसलमान अगर मेरी बात समझता है, तो वह मुसलमान रह जाएगा। तो मेरा तो हिंदू भी दुश्मन हो जाएगा, मुसलमान भी दुश्मन हो जाएगा। पुरानी लड़ाई ऐसी थी कि हिंदू को मुसलमान बनाया जा रहा था तो कम से कम मुसलमान तो उसके साथ। हिंदू दुश्मन होता था, कोई फिकर नहीं।
प्रश्न--विज्ञान की भांति साधना के उपयोग के लिए यदि राज्य की सत्ता का उपयोग हो, तो क्या हितकर नहीं होगा?
भगवान श्री--नहीं, इसके लिए बिलकुल उपयोगी नहीं है। विज्ञान का मामला बहुत भिन्न है। वह ऐसा है कि दो तरह से नहीं लड़ रहे हैं हम सारी दुनिया में साइंस एक है, चाहे अमेरिका ताकत लगाए, चाहे रूस। चांद पर चाहे अमरीका पहुंच गया, चाहे रूस, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी चांद पर पहुंच गया। अब आदमी का ज्ञान चांद पर पहुंचने वाला हो गया। अब तो हालतें यह हुई जा रही है कि अभी रूस के वैज्ञानिक ने कहा कि अब अमेरिका और रूस के सहयोग के बिना साइंस विकसित नहीं होनेवाली है। अब कोई एक राज्य बढ़ा ही नहीं सकता, उसको इतनी बड़ी शक्ति की जरूरत पड़ गयी है। विज्ञान का मामला बिलकुल उल्टी है।
अगर मुसलमान बढ़ता है; तो उससे हिंदू को नुकसान होता है। अगर ईसाई बढ़ता है, तो हिंदू और मुसलमान का नुकसान होता है। इनके विश्वास न तो वैज्ञानिक हैं, न विचार को बल देते हैं, न विचार को रोकते हैं। इसलिए सारी दुनिया के राज्यों का धर्म से छुटकारा न हो जाना चाहिए। यह भी ध्यान रहे, जब तक राज्य का धर्म से छुटकारा न हो, तब तक साइंस के पास हम ठीक से खड़े न हो पाएंगे; क्योंकि धर्म और

उसका कुल कारण इतना है कि इंगलैंड ईसाई मुल्क है, आर्थोडाक्स है, और यह आर्थोडाक्सी उसकी जान लिए ले रहे हैं। रूस ने पचास साल में साइंस को इतनी गति दी जमीन पर, कि किसी दूसरे मुल्क को उतनी गति करने में पांच सौ साल लगेंगे, क्योंकि रूस धर्म से बिलकुल मुक्त हो गया है। वह जिंदगी ही खत्म कर दी है। उसकी सारी ताकत साइंस में लग गयी है। हिंदुस्तान तो इसलिए बुरी तरह पिछड़ा हुआ है साइंस में कि वह धर्मों से मुक्त नहीं हो पाया है। और नुकसान ही होगा, जब तक वह धर्मों से मुक्त न होगा।
अहमदाबाद २०-८-१९६९

असुरक्षा से संबोधि

एक फकीर था बोधिधर्म। वह हमेशा दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता था। सुननेवाले पीछे बैठें, तो वह उनकी तरफ मुंह करता ही नहीं था। चीन का सम्राट उससे मिलने आया, तो वह दीवाल की तरफ मुंह किए बैठा हुआ था। सम्राट पीछे बैठा था। उसने कहा, यह कौन सा ढंग है? कृपा करके इस तरफ मुंह करिए। उसने कहा, बहुत अनुभव के बाद दीवाल की तरफ मुंह करना सीखा हूं। सम्राट ने पूछा, मतलब नहीं समझा! उसने कहा, आदमियों की भीड़ में मैंने दीवाल ही देखी है, और तब बड़ी नाराजगी होती थी। तो फिर मैं दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता हूं। अब नाराजगी नहीं होती; क्योंकि अब दीवाल ही है, अब तो कोई बात नहीं है।
लेकिन जब आदमी दीवाल की तरह मालूम पड़ते हैं, तब बड़ा कष्ट होता है। वह जिंदगी भर दीवाल की तरफ मुंह करके ही बोलता रहता।
उसने सम्राट से कहा, मैं तुम पर दया करके इस तरफ मुंह किए हुए हूं, नहीं तो मैं बड़ा नाराज हुआ हूं। क्योंकि आदमी को दीवाल मानने में कष्ट है, और भीड़ तो बिलकुल ही दीवाल है। वहां कोई है ही नहीं, जो आपको सुन रहा है, समझ रहा है, अथवा आपसे जड़ रहा है। पर आप किससे बोल रहे हैं? किसी से नहीं बोल रहे हैं। आप खुले आकाश से बोल रहे हैं, भीड़ सुन रही है। तो बोला तो जा सकता है निकट ही। और भी बड़ी कठिनाई है; क्योंकि जो हम बोलते हैं, वह बोलनेवाले पर ही निर्भर नहीं होता है; आधा तो सुननेवाले पर निर्भर होता है; क्योंकि मैं क्या बोलूंगा जयराज जी से, वह आधा उन पर निर्भर होता है, और विजय जी से क्या बोलूंगा वह आधा उन पर निर्भर होगा। वह मुझसे क्या निकलवा लेंगे, वह मुझे किस कोने में खड़ा कर देंगे, मुझे क्या कहना पड़ेगा, यह उन पर निर्भर है। भीड़ कुछ भी निकलती है, न निकाल सकती है।
तो एक-एक व्यक्ति के एनकाउंटर में कुछ अर्थ है।
प्रश्न--अर्जुन न होते, तो शायद कृष्ण का उद्देश्य कुछ और ही होता?

कृष्ण में कुछ और ही होता, अर्जुन के बिना कुछ और ही होता। वह अर्जुन ही था, जो उस उद्देश्य के पीछे का है। यानी ऊपर से ऐसा दिखता है कि बोलनेवाला बोल रहा है। यह इतनी सरल बात नहीं है। सुननेवाला भी बोलवा रहा है। वह निकाल रहा है, बहुत कुछ उस पर निर्भर करेगा। भीड़ में कोई नहीं है वहां। इधर मैं बहुत परेशान हुआ है; क्योंकि दिन-रात भीड़ ही भीड़ में हूं। भीड़ के पास न आत्मा होती है, न आंख होती है। इसलिए एक-एक व्यक्ति से सीधे आमने-सामने बात करने का जो रस है, मजा है! लेकिन आमतौर से नेतागण और गुरुजन सीधे बात करना पसंद नहीं करते हैं। सोचनेवाले आदमी को भी बर्दाश्त नहीं करते। हां, वह भीड़ ही चाहते हैं।

भीड़ बिलकुल मशीन है। भीड़ से कोई डर नहीं है, भीड़ खंडन नहीं करती है, भीड़ उलटकर जवाब नहीं देती है। भीड़ से कोई टक्कर नहीं है, कोई चुनौती नहीं है। भीड़ इधर खड़ी है, डेड मास है। आप बोले चले जाते हैं, जो आपको बोलना है, कहना है, जब आप एक व्यक्ति के सामने खड़े होते हैं, तो एक जिंदा आदमी है और वह आपको कुछ भी बोलने नहीं देगा। टोकेगा भी, गलत भी कहेगा। लड़ेगा भी,झगड़ेगा भी। जब दो व्यक्ति बात-चीत करेंगे, तो उसमें एक बोलनेवाला, एक सुननेवाला, ऐसा नहीं रह जाता। वह दोनों बोलनेवाले होते हैं, और दोनों ही सुनने वाले भी होते हैं। और उसमें ऐसा नहीं होता है कि एक सत्य जानता है, और दूसरा नहीं जानता है। उसमें दोनों के संघर्ष से सत्य निकलता है। लेकिन गुरु को खयाल होता है कि सत्य मेरे पास है, मुझे देना है, निकालने का सवाल कहां है? दे देना है, तो आप चुपचाप ले लो, रास्ते पहुंच जाओ।

इसलिए आमतौर से धर्मगुरु हैं, नेता हैं भीड़ को चलानेवाले लोग हैं, व्यक्ति को पसंद नहीं करते हैं। व्यक्ति के साथ डर जाएंगे। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जो लोग बड़ी-बड़ी भीड़ को प्रभावित करते हैं, वे एक छोटे से व्यक्ति से घबरा जाएंगे। हिटलर जैसा आदमी लाखों लोगों को कंपाएगा, लेकिन कमरे में एक आदमी के साथ अकेले नहीं बैठ सकता है घंटे भर। इतना डर जाएगा। शादी नहीं की है हिटलर ने मरने के दिन तक, इसीलिए कि और किसी को तो कमरे के बाहर रोक सकते हैं; लेकिन जिस औरत से शादी कर लेंगे, वह तो कमरे में साथ होगी। और साथ होने से इतना डर लगता है एक आदमी से! क्योंकि भीड़ में जो न तो है, वह अपने को व्यवस्थित कर लेता है। वह जैसा दिखाना चाहता है, वैसा हो जाता है। लेकिन चौबीस घंटे थोड़े ही पोज कर सकते हैं! चौबीस घंटे मुश्किल हो जाएगी, तो मर जाओगे। तो हिटलर ने किसी को दोस्त नहीं माना जिंदगी भर। उसके जो साथ थे वे कहते थे, या तो तुम उसे दुश्मन हो सकते हो, या उसके अनुयायी हो सकते हो। दोस्त होने का कोई उपाय नहीं है। कोई उसके कंधे पर हाथ नहीं रख सकता है। और कोई उसके पास बैठ भी नहीं सकता। वह हमेशा मंच पर होगा मंच के नीचे होगे। साथ होने का उपाय नहीं है। नेता छोड़ते नहीं उपाय।

व्यक्ति से सीधा उलझना बहुत कठिन बात है। और एक छोटे से छोटा आदमी इतना अदभुत आदमी है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन भीड़ में कोई भी नहीं है, वह तो नोबडीनेस

है। वहां बेधड़क है, कुछ भी नहीं है। इधर मुझे तो निरंतर ऐसा लगता है कि सीधा एक-एक व्यक्ति से पास में हो, तो उसका कुछ अर्थ है। कम्युकेशन है, संवाद है कुछ।

प्रश्न--आप तो बहुत घूमते हैं। आपको लगता है कम्युनिकेट करना आसान है। आपको इस देश में आज इंटेलेक्चुअल स्टैंडर्ड क्या लगता है?

बहुत कम है; लेकिन बहुत कम होने का कारण यह नहीं है कि बुद्धिमान लोग मुल्क में बहुत कम हैं। असल में बहुत गलती हो गयी। शिक्षित आदमी बुद्धिमान समझा जा रहा है, यह दिक्कत हो गयी है, और हम उसी में खोजते हैं। बुद्धिमान , एजुकेटेड और इंटेलिजेन्स को हम इकट्ठा माने हुए हैं, कि कोई आदमी शिक्षित है ठीक से, डिग्री है उसके पास, तो वह बुद्धिमान होगा। यह जरूरी नहीं है, डिग्री जरूरी नहीं है यह नहीं कह रहा। मैं यह कह रहा हूं कि डिग्री होने से आदमी इंटलिजेंट हो, यह जरूरी नहीं है। बल्कि सच यह है कि डिग्री पाने का हमारा जो रास्ता है, उसमें इंटेलिजेंट आदमी पिछड़ जाएगा, स्टुपिड आगे हो जाएगा।

हमारा जो रास्ता है, वह इसी ढंग का है। क्योंकि हमारी सारी शिक्षा बहुत बहरे में स्मृति की परीक्षा है, बुद्धिमत्ता की नहीं। और बुद्धिमान आदमी जो है, वह बहुत जल्दी भूलता है। और बुद्धिहीन आदमी जो है, वह चीजों को पकड़ लेता है, और कभी नहीं छोड़ता है। और पकड़े इसलिए रखते हैं कि नए समझने का तो उपाय नहीं है, यही उसकी संपत्ति है। बुद्धिमान आदमी समझता है और छोड़ देता है। क्योंकि क्या पकड़ना है? कल जब फिर सामने जिंदगी हो, तो फिर बुद्धिमत्ता काम कर लेगी। तो बुद्धिमान स्मृति को इकट्ठा नहीं करता है, बुद्धू स्मृति इकट्ठी करता है। और स्मृति का जो प्रशिक्षण है, उसमें हम खोजने जाते हैं कि इंटेलिजेंट आदमी कहां है? तो शिक्षित आदमी जरूरी रूप से बुद्धिमान आदमी नहीं है। लेकिन, अगर हम यह श्रम छोड़ दें, और सहज आदमी में खोजने चलें, तो बुद्धिमान लोग दिखाई पड़ेंगे।

कभी गांव में जिसको हम एक निपट गंवार कहेंगे, वह बुद्धिमान हो सकता है। लेकिन जो मेजरमेंट हैं, हो सकता है वह पकड़ में न आ सकें, क्योंकि हमने मेजरमेंट गलत बना रखे हैं। इसमें उसकी गलती नहीं है। बुद्धिमत्ता तो बहुत है, लेकिन शिक्षित होने की बुद्धिमत्ता समझे, तब फिर कठिनाई पैदा हो जाती है; और वैसे आदमी से, क्योंकि बुद्धिमान के भी बहुत रूप हैं। अक्सर यह होता है कि जो मेरी बुद्धिमत्ता है, वैसे आदमी को मैं बुद्धिमान समझ पाता हूं। और बुद्धि मता की बहुत दिशाएं हैं, बहुत आयाम हैं, बहुत डायमेंशंस हैं। यानी बुद्धिमत्ता कोई ऐसी चीज नहीं है कि एक ही तरह की हो।

एक पेंटर है। उसके पास एक तरह की विजडम है, बुद्धिमत्ता है। अगर गणितज्ञ से उसकी मुलाकात हो, तो गणितज्ञ समझ सकता है कि यह आदमी इटेंलिजेंट नहीं है। क्योंकि गणितज्ञ के पास एक तरह की बुद्धिमत्ता है, जहां दो चार ही होते हैं। जहां सब बंधा हुआ फिक्स्ड है। पेंटर की बात बहुत भिन्न है।

वानगाग का एक चित्र है। उसने दरख्त उतने बड़े बनाए हैं कि चौखटे के पर निकल गए हैं। पेंटिंग छोटी पड़ गयी है, और पेंटिंग का आकाश भी छोटा पड़ गया है, वह दरख्तों के पार चले जा रहे हैं, और सूरज वगैरह इतने छोटे-छोटे कोने में पड़े हैं कि जिनकी कोई हैसियत नहीं। उसका एक मित्र उसे देखने आया है। उस मित्र ने कहा कि यह क्या पागलपन है? दरख्त इतने बड़े और सूरज इतना सा? इसमें कोई गणित भी तो हो, यह कैसा गणित है? दरख्त इतना बड़ा सूरज इतना सा? तुम्हें प्रपोर्शन का, अनुपात का कुछ खयाल नहीं है? अनुपात की जो भाषा है, वह गणित की भाषा है। प्रपोशन की जो भाषा है, वह गणित की भाषा है। तो उस चित्रकार ने कहा, मैं कोई गणितज्ञ नहीं हूं, और सूरज ने कोई गणित से सहमत होने को ठेका ले लिया है? मैंने तो कोई और ही बातें चित्रित की है। गणित से इसको कोई लेना-देना नहीं। दरख्तों को कभी भी ऐसा नहीं देख पाया। मैं दरख्तों को सदा ऐसा ही देख पाया हूं कि दरख्त जो हैं, वे पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं, आकाश को छूने की। एम्बीशंस हैं पृथ्वी का।

तो पृथ्वी अभी तक जीत नहीं पायी है, लेकिन हमें क्या बात है? यह जो आदमी है, इसको गणितज्ञ कहेगा, ठीक है, फिजूल हुआ यह! यह नापना था, तौलना था। नाप तौल की एक दुनिया है, वहां की यह बुद्धिमत्ता है। लेकिन एक और प्रकार की बुद्धिमत्ता होती है। अब एक संगीतज्ञ है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक तार्किक है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक प्रेमी है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। और एक किसान है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक मिट्टी खोदने वाले है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। लेकिन, सच तो यह है कि जितने तरह के लोग हैं, उतनी तरह की बुद्धिमत्ताएं हैं। और हम जब भी तौलने जाते हैं, तो अपनी बुद्धि को हम कसौटी बना लेते हैं। वह दूसरा आदमी उस कसौटी पर नहीं बैठता; क्योंकि वह दूसरा आदमी हमारे जैसा नहीं है। तब कठिनाई हो जाती है।

मुझे बहुत जाएगा रहा है एक फकीर। उस पर गांव में लोगों ने इल्जाम लगा दिया है और कह दिया है राजा से कि यह फकीर नास्तिक है, अधार्मिक है, और इसके बोलने पर पाबंदी लगाना जरूरी है, नहीं तो सारा गांव बर्बाद हो जाएगा। तो राजा ने उस फकीर को बुला लिया, उस फकीर ने राजा से कहा कि किसने तुम्हें यह खबर दी? क्योंकि मुझे पता ही नहीं कि नास्तिकता और धार्मिकता तौलने का मापदंड क्या है? मैं तो उसी की खोज कर रहा हूं। मुझे पता चल जाए, तो मैं भी उस तराजू पर बैठकर अपने को तौल लूं कि मैं धार्मिक हूं कि अधार्मिक। कहां किसने? राजा ने कहा कि मेरे ये पंडित बैठे हैं। इन्होंने कहा है। उसने कहा कि इन पंडितों से, इसके पहले कि मैं अपनी जांच करवाऊं, एक छोटा सा सवाल पूछना है।

पंडित तैयार हो गए। ऐसे पंडित हमेशा तैयार होते ही हैं, रेडीमेड ही होते हैं। उनके पास कुछ ऐसा नहीं होता है कि किसी चीज का मुकाबला किया जा सके। उनके पास चीजें तैयार होती हैं। मुकाबला सिर्फ बहाना होता है, खूंटियां होती हैं, जिन पर जो उनके दिमाग में सदा से

तैयार कर रखा है, वह टांग देते हैं। वे तैयार हो गए। उस फकीर ने एक-एक कागज उनको थमा दिया, और कहा कि मैं एक प्रश्न पूछता हूं, आप सब उत्तर लिख दें। तो उन्होंने सोचा कि यह कोई कठिन प्रश्न पूछेगा। और मजा यह है कि सब कठिन प्रश्नों के उत्तर तैयार हैं। सरल प्रश्न का उत्तर ही मुश्किल बात है। क्योंकि उसका उत्तर कहीं लिखा नहीं होता है। उस फकीर ने बड़ा सरल प्रश्न पूछा। उसने पूछा, व्हाट इज ब्रेड--रोटी क्या है? उन्होंने सोचा कि पूछेगा, ब्रह्म क्या है? और परमात्मा क्या है? मोक्ष क्या है? प्रेम क्या है? यह कैसा गंवार आदमी आ गया है, जो पूछता है कि रोटी क्या है? यह भी कोई सवाल है? कोई ज्ञान है?
उन्होंने कहा, यह भी कोई सवाल है? फकीर ने कहा, मैं बिलकुल नासमझ आदमी हूं, बस ऐसा ही सरल पूछ सकता हूं। आपकी बड़ी कृपा होगी, जवाब दे दें। आप इस पर लिख दें, राजा भी हैरान हुआ, इसको काहे के लिए पकड़ लाए हैं? यह क्या नास्तिक होगा? यह बेचारा, ऐसी सरल बातें भी इसे अभी पता नहीं कि रोटी क्या है! इसके सवाल कोई मेटाफिजिक्स के, कोई ज्ञान के तो नहीं हैं। पंडित लिखने में बड़ी मुश्किल में पड़ गए; क्योंकि कहीं नहीं लिखा था कि रोटी क्या है! पढ़ा ही नहीं था किसी किताब में, किसी ब्रह्मसूत्र में, किसी गीता में, किसी कुरान में! कहीं नहीं लिखा है कि रोटी क्या है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए।

एक ने लिखा, रोटी एक तरफ का भोजन है। और क्या लिखे। गेहूं, पानी और आग का जोड़ है। किसी ने लिखा है, रोटी बड़ी ताकतवर चीज है, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि रोटी सब कुछ है। खून भी वही है, हड्डी भी वही है, मांस भी वही है, मज्जा भी वही है। तो रोटी क्या है, कहना बहुत मुश्किल है। रोटी बहुत मिस्ट्री है। एक ने लिखा कि पहले यह पता चल जाए कि पूछनेवाले व मतलब का मतलब क्या है, मैं बता सकता हूं।

सबके कागज लेकर फकीर राजा के सामने गया और उसने कहा, यह कागज देख लें। इन पंडितों को यह भी पता नहीं है कि रोटी क्या है? और ये सब इस पर भी राजी नहीं हैं कि रोटी क्या है? ये इस पर कैसे राजी होंगे कि ईश्वर क्या है, और आस्तिकता क्या है? इन्होंने कैसे जान लिया मुझे? वह पता मुझे बता दें आप! मैं भी उस तराजू पर चढ़ जाऊंगा। अभी मुझे ही पता नहीं है कि मैं कौन हूं--नास्तिक हूं कि आस्तिक हूं। इनको कैसे पता लग गया है?

एक तरह की बुद्धिमत्ता उन पंडितों के पास भी थी। किताबों में जो लिखा था उसे वे जानते थे। यह आदमी बड़ा होशियार है। वह किताब की बात नहीं पूछेगा। यह आदमी भी एक तरह की बुद्धिमत्ता लिए हुए है, जो उससे गहरी है। इसके पास भी एक विजडम है। अक्सर होता है कि यहां कठिनाई है। हम बुद्धिमान आदमी नहीं मिलता है; क्योंकि हमारी जो बुद्धिमत्ता है, हम उसी से तौलते चलते हैं। और दूसरी बात यह होती है जाने-अनजाने, जो हमसे सहमत हो जाए, वह बुद्धिमान मालूम पड़ता है, जो कि ठीक नहीं है। मुश्किल तो यह है कि जो बुद्धिमान है, वह सहमत जरा मुश्किल से हो सकेगा। और हमारा मन कहता है, जो सहमत हो जाए उसे हम बुद्धिमान मान लें। सरल है वह बात। लेकिन जरा कठिन है

सहमति। यानी हमारी नजर में उसकी बुद्धिमत्ता हम सहमति से तौल लेते हैं। और जब कि बुद्धिमान आदमी का सहमत होना जरा मुश्किल है। अपनी नजर है, अपनी दृष्टि है, अपना सोचना है।

और, मैं यह मानता हूं कि कोई किसी से सहमत हो ही क्यों? असल में सहमति की अपेक्षा बहुत गहरे में वायलेंस है, और मैं आकांक्षा करूं कि मुझसे आपको सहमत होना चाहिए, तो मैं किसी न किसी गहरे तल पर आपको मिटाना चाहता हूं, और अपने को उसमें बैठाना चाहता हूं। आपको डोमिनेट करना चाहता हूं, मारना चाहता हूं। तो हम यह भी खयाल में रखते हैं कि जो हमसे सहमत हो जाए, वह बुद्धिमान है। और इसीलिए यह हो जाता है कि गुरुओं और महात्माओं के पास निपट बुद्धू इकट्ठे हो जाते हैं, जो उनसे सहमत हो जाते हैं। हम कहते हैं, बहुत अच्छे लोग इकट्ठे हो गए हैं। और वे जो इकट्ठे हो गए हैं वे वही लोग हैं, जो सहमत हो जाते हैं।

वाल्तेयर के खिलाफ कोई एक आदमी था, डिडरो। और उसने वाल्तेयर के खिलाफ बहुत सी बातें कहीं, और वह एक दिन वाल्तेयर को रास्ते पर मिल गया। तो, उसने वाल्तेयर से कहा कि आप तो सोचते हो, मैं इस आदमी को मार डालूं। तो वाल्तेयर ने कहा, क्या कहते हो? घर चलो। आज मैं डायरी में तुम्हारे संबंध में एक बाम कहना चाहता हूं वह उसे घर लाया। डायरी में उसने एक वाक्य लिखा है कि जो मुझसे असहमति हैं, और मेरे विरोध में हैं, उन्हें उस तरह से सोचने का अधिकार और हम है और उस तरह बोलने को भी। अगर इसकी लड़ाई में मुझे अपनी जान गंवानी पड़े, तो मैं जान गंवा दूंगा। लेकिन वे गलत हैं, यह कहने का अपना अधिकार मैं मानता रहूंगा। मैं जान लगा दूंगा उसके इस अधिकार के लिए थक उन्हें सोचने का हक है, लेकिन वह गलत हैं, यह कहने का हक है।

आखिर इतना खयाल हमें हो कि हम सहमति न खोज रहे हों, तो बहुत बुद्धिमान लोग मिल सकते हैं। लेकिन सहमति खोजने की वजह से कठिनाई हो जाती है। और फिर यह होता है जाने अनजाने किसी न किसी रूप में हम उस आदमी को पसंद करते हैं, तो किसी न किसी भांति हमारे जैसा है। जिससे हमारी कानफ्लिक्ट न हो। और दुख की बात यह है कि जो हमारे जैसा है, वह हमें कोई रस नहीं है दें सकता। रस हमें वही दे सकता है, जो हमारे मतभेद न रखता हो।

हम हमेशा यह कर लेते हैं कि जो हमारे जैसा है, उसे चुन लेते हैं। पहले मौके पर ही अच्छा लगता है, क्योंकि वह हमारा ही दर्पण है, उसमें हम ही दिखाई पड़ जाते हैं। फिर चार दिन बाद मुश्किल शुरू हो जाती है; क्योंकि यह आदमी तो बिलकुल हमारे जैसा है। पश्चिम में प्रेम विवाह की जो असफलता है, उसकी बुनियाद में कारण यह है। हर व्यक्ति उसको प्रेम कर लेता है पहले मौके पर, जो उसे अपने जैसा लगता है। लेकिन जब साथ रहता है, तो अपने जैसा आदमी सुखद नहीं मालूम पड़ता। भिन्न चाहिए, भेद चाहिए। उसकी अपनी रुचि, अपना व्यक्तित्व चाहिए, और वह बिलकुल मेरे जैसा है। तो वह काफी छाया मालूम होने लगता है। वह व्यर्थ हो जाता है। उसमें हमें कोई रस नहीं रह जाता है। और एक बात

है, उनसे हमें जीतने की आगे कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह जीत ही लिया गया है, बात खत्म हो गयी है। तो, ऐसा अक्सर हो जाता है। और इसलिए अपने विरोधी को प्रेम करने की क्षमता जब तक न बढ़े, तब तक न तो हम कीमती मित्र बना सकते हैं, न कीमती पत्नी खोज सकते हैं, न कीमती पति खोज सकते हैं और न कीमती साथी खोज सकते हैं। हम खोज ही नहीं सकते हैं, जब तब अपने से विरोधी में हम प्रेम की क्षमता विकसित नहीं करते हैं। इसलिए पता नहीं चलता है कि कितनी बुद्धिमत्ता है। बुद्धिमत्ता तो बहुत है। कई बार ऐसी जगह होती है, जहां हम कभी नहीं सोचते।

इधर कोई डेढ़ सौ दो सौ वर्ष में कालेज के प्रोफेसर बुद्धिमान समझे जाते रहे हैं। लेकिन दुनिया में जितने आविष्कार हुए हैं, वे उनके लोगों ने किए हैं, जिनका युनिवर्सिटी से कोई संबंध नहीं रहा है। यानी प्रोफेसर के नाम का, आविष्कार से संबंध न के बराबर है। और अज्ञात जगह से, अनजान कोने से कोई आदमी कुछ खोज लेता है। इसका हम कभी खयाल ही नहीं करते कि यह भी बुद्धिमान है। बहुत बार ऐसा होता है, रॉ इंटेलीजेंस जो है, वह दिखाई नहीं पड़ती है। कच्ची युनिवर्सिटी से नहीं गुजरी है, पक नहीं गयी है, कच्ची है, दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन कच्ची बुद्धिमत्ता में विकास की ज्यादा संभावना होती है, और बहुत उपाय मार्ग होते हैं। और पकी हुई बुद्धिमत्ता पके हुए घड़े की तरह होती है जिसको अब नहीं ढाला जा सकता। कच्चा घड़ा है, वह अभी बहुत तरह की शक्ल ले सकता है। तो रॉ इंटेलीजेंस तो बहुत है दुनिया में!

और भी बहुत मजे की स्थितियां हैं कि जिसको हम बुद्धिमान समझदार कहते हैं, जिस प्रक्रिया से, जिस प्रोसेस से, हम इसे गुजारते हैं, वह सब बुद्धिमत्ता छीन लेती है। हेनरी थारो विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटा था। वह अपने गांव का पहला ग्रेजुएट था। गांव के लोगों ने स्वागत किया। गांव के बूढे आदमी ने उसके स्वागत में कहा कि यह हमारे गांव का पहला स्नातक है, इसलिए मैं इसको आदर देने नहीं आया हूं। इसको आदर देने इसलिए आया हूं कि यह लड़का विश्वविद्यालय से अपने को बचाकर वापस लौटा है। यह अभी भी बिलकुल ताजा है। बासी नहीं पड़ गया, इसके प्रोफेसर, गुरु इकट्ठे होकर भी इसकी जान नहीं ले पाए, इसको मार नहीं पाए। यह सब भी सोचता है। और अब भी फ्रेय प्वाइंट पर, ताजा हुआ है कि मैंने जान लिया है। अभी इसमें स्योनिरटी है कि खोजता हूं, कुछ पता नहीं है। वह इसमें है, इसलिए मैं इसका स्वागत करने आया हूं।

और यह सच बात है, यह बड़ी रेयर घटना है। हमारी जो पचीस साल की तालीम की व्यवस्था है, वह बुद्धिमत्ता को करने की है। संभावना भी हो, तो उसको छांट डालने की है। क्योंकि बुद्धिमत्ता बहुत गहरे में विद्रोह है। और स्थिति यह है कि न समाज विद्रोह चाहता है, न बाप विद्रोह चाहता है, न मां, न गुरु, न नेता--कोई विद्रोह नहीं चाहता। जिस आदमी में थोड़ा भी बुद्धि है, वह विद्रोही हो जाएगा। क्योंकि उसकी बुद्धि पच्चीस जगह कहेगी कि यह गलत है। वह पूछेगा, क्यों है? हजार सवाल उठाएगा और सब जवाब जो पुराने पके-पके

हैं, उन सबको गड़बड़ कर दोगे, सबको, हिला देगा, डुला देगा। चीजों को अराजक कर देगा।

तो इस बुद्धि का डर रहा है दुनिया में हमेशा। इसलिए बुद्धिमान आदमी पैदा न हो पाए, इसकी हमारी सारी चेष्टाएं हैं। बाप भी बेटे लिए कहता है कि जो आज्ञाकारी है, वह अच्छा है। लेकिन जिसमें थोड़ी बुद्धि है, वह एकदम आज्ञाकारी नहीं भी हो सकता है। आज्ञा मान सकता है, तोड़ भी सकता है। ये दोनों संभावनाएं सदा मौजूद रहेंगी। वह न भी कह सकता है, हां भी कह सकता है, लेकिन हां ऐसी न होगी कि जिसके भीतर का न बिलकुल मार डाला गया हो। मगर बाप को इच्छा नहीं लगेगा लड़का, जो न भी कह देता हो। बाप के अहंकार के विरोध में है यह बात कि लड़का, और न कह दे! स्कूल का शिक्षक भी नहीं चाहता कि कोई न कहे। देश का नेता भी नहीं चाहता कि कोई न कहे। सब चाहते हैं आज्ञा--आज्ञा चुपचाप मानो और चलो। तो, बुद्धिमत्ता नष्ट हो जाएगी, जंग खा जाएगी।

बहुत गहरे में समझा जाए, तो बुद्धि आती है निगेटिव से सदा ही। उसमें जो निखार आता है, वह इनकार से आता है। जैसे कोई पत्थर की मूर्ति बनाता है, तो छेनी से तोड़ डालता है जगह-जगह से और वह मूर्ति पत्थर से नहीं बनती, वह छेनी से और तोड़े गए टुकड़ों से निर्मित होती है अंततः। जो छान के काट डाला गया है, उससे निर्मित होती है। नहीं तो पत्थर तो पत्थर ही है। उसमें अगर तोड़ नहीं होती, तो बना रह जाता। तो प्रतिभा भी निषेध से, निगेटिव से, काटने से, तोड़ने से, इनकार से बनती है: और कोई पसंद नहीं करता है इसको। तो, हम सब मार डालते हैं, बिलकुल। मैं भी उस आदमी को पसंद करूंगा जो मैं कहूं कि यह; तो वह भी कहे, हां, ऐसा ही। इससे मेरे अहंकार को बड़ी गहरी तृप्ति मिलती है कि जो मैं कहता हूं वही ठीक है, और अकेला मैं नहीं मानता, और लोग भी मानते हैं। जितने लोग अनुयायियों को खोजते हैं, बहुत गहरे में, इन्हें भरोसा नहीं है कि जो यह कह रहे हैं वह ठीक है। जब बहुत लोग भी इसको ठीक कहते हैं, तब इनको भी भरोसा आता है। जब इतने लोग मानते हैं, तो गलत हो कैसे सकता है?

जो आदमी जितना भीतर भरोसे से कम है, भरोसा कम है जिसमें अपनी बात का, वह अनुयायी खोजेगा।

अनुयायी जो हैं वे सब्स्टीटयूप हैं, कान्फिडेंस लानेवाले हैं। तो वह सबको राजी करना चाहेगा, सहमत करना चाहेगा, और वह तोड़ेगा, लोगों की प्रतिभाएं नष्ट करेगा। अब तक आदमी ने प्रतिभा को जगने नहीं दिया, बुद्धिमत्ता को पैदा होने नहीं दिया। वैसे वह बहुत है। अगर उसे फूटने का मौका मिले, तो दुनिया अनूठी हो जाए, लेकिन तब उस दुनिया में नियम हम हो जाएंगे। उस दुनिया में ढांचे टूट जाए। उस दुनिया में व्यक्ति हों, समाज कम हो। जितनी बुद्धिमत्ता होगी, उस दुनिया में उतने ही इंडिविजुअल्स होंगे, सोसायटी मिट जाएगी।

तो, उस खतरे से बचने के लिए बुद्धिमान को हम पैदा नहीं होने देते हैं। इसलिए सुकरात को जहर पिला देते हैं, जिससे को सूली पर लटका देते हैं, हमने बुद्धिमान आदमी के साथ

अच्छा व्यवहार ही नहीं किया कभी। तो वे पैदा कैसे हो? उनका होना बिलकुल अव्यावहारिक है, क्योंकि हम सब मिलकर उनको मार डालते हैं। इसलिए दिखाई नहीं देते। वैसे तो बुद्धिमानी बहुत है। हर आदमी में है। जन्म से उसको मिलती ही है। अगर वह खुदा ही उसको खोता चला जाए, तो बात अलग है। सौदा कर लेता है वह, कन्वीनियन्स खरीद लेता है, इंटेलिजेंस खो देता है। कुछ सौदा है। सुविधा इसी में है कि ज्यादा बुद्धिमानी न विकसित की जाए। सुविधा है बहुत, इसलिए नहीं मिलता है। नहीं तो वैसे एक-एक आदमी और अगर हम बहुत सहानुभूति से खोजने लगे, तो भी फर्क पड़ेगा। क्योंकि जब हम किसी व्यक्ति के पास परीक्षक ही रह जाते हैं। तब उस व्यक्ति के सब द्वार–दरवाजे बंद हो जाते हैं। वह डर जाता है और फिफेन्सिव हो जाता है। और जब कोई आदमी डिफेन्सिव हो गया, तो फिर हमें उसके लिए असली रूप का पता नहीं चलता कि भीतर क्या है! उसके पास अत्यंत सहानुभूति से, सिम्पैथी से जाने की जरूरत है। बड़े प्रेम से, परीक्षक की तरह नहीं! तो शायद एक साधारण से आदमी में भी इतनी बुद्धिमत्ता के फूल खिलने लगते हैं, लेकिन कभी किसी ने उसको सहानुभूति से नहीं देखा था, वह डर गया सब फूल उसने भीतर छिपा लिए हैं। वह डरा हुआ खड़ा है कि कुछ गड़बड़ न हो जाए।

हर आदमी को डिफेंस की हालत मग हमने डाल दिया है। ऐसी बेहूदी सोसायटी हमने बनायी है दुनिया में कि हर आदमी रक्षा की हालत में पड़ा हुआ है, फिफेन्सिव हो गया है। और जब भी कोई डिफेन्सि हो जा, तब वह कभी खुलता ही नहीं, क्योंकि खुलने में डर है। वह हमेशा सिकुड़ा रहता है, बंद रहता है। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि जिन्हें आप प्रेम करने लगते हैं, बाद में आप पाते हैं कि उनमें बुद्धिमत्ता है। तो प्रेम उनकी बुद्धिमत्ता को एकदम निकालने का, खुलने का मार्ग बना जाता है। और दूसरों में बिलकुल बुद्धिमत्ता नहीं पाते हैं। बेवकूफ कहेगा, क्योंकि उसको दिखाता है कि इसमें कुछ भी तो नहीं है। और सच बात यह है कि न केवल बुद्धिमत्ता, बल्कि जीवन की सारी चीजें, सहानुभूति की हवा में खिलती हैं। यानी सच बात तो यह है कि कोई आदमी इतना सुंदर नहीं होता है, जितना उसको कोई प्रेम करनेवाला मिल जाता है तब वह हो जाता है एकदम से। इतना सुंदर होता ही हनीं कभी वह आदमी; क्योंकि वह हमेशा डिफेन्सि है, सब सिकुड़ा रहता है, लेकिन जब उसके पास कोई बहुत प्रेम से आता है, तब उसकी सब पंखुडियां खिल जाती हैं। अब उसे डर नहीं है, वह पूरा खुल जाता है।

लोग कहते हैं कि हमें सौंदर्य से प्रेम है। यह आधा हिस्सा है। प्रेम करके हम सौंदर्य निर्मित करते हैं, यह ज्यादा गहरा और ज्यादा मूल्यवान हिस्सा है। हम सौंदर्य क्रिएट, निर्मित करते हैं। और उसी तरह इटैलिजेंस भी पैदा होती है। उसी तरह सहमति भी पैदा होती है, कान्फिडेंस भी पैदा होता है। लेकिन कोई किसी को प्रेम ही नहीं करता है। हम सब प्रेम चाहते हैं, इसलिए किसी की इटैलिजेंस हम नहीं पूछ पाते हैं और न किसी का सौंदर्य प्रकट कर पाते हैं। हम प्रेम चाहते हैं, और वह देने से खुलेगा। और मजा यह है कि अगर हम दें, तो प्रेम लौटता है। और मांगें, तो रुक जाता है। वह मांगने से कभी आता ही नहीं। दुनिया

में मांगने से सिर्फ कूड़ा-कर्कट मिल सकता है, मूल्यवान कुछ भी नहीं मिल पाता। मूल्यवान तो किसी गहरे रिस्पोंस से आता है, और रिस्पोंस तो तब होता है, जब मैं हूं। इसलिए प्रेम की बहुत कभी होने की वजह से दुनिया में बहुत कम लोग बुद्धिमान दिखाई पड़ते हैं। वह प्रेम की कमी है। कोई किसी को प्रेम नहीं कर रहा है।

एक अमरीकी फिल्म अभिनेत्री थी ग्रेटा गार्बो, उसका कहीं कोई जीवन पढ़ा था मैं। वह यूरोप के किसी छोटे से कोने के गांव में, बीस वर्ष की, अठारह वर्ष ही हो गयी थी, तब तक एक नाई की दुकान में लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती थी। दो पैसे मिल जाते उसे दाढ़ी पर साबुन लगाने के। दाढ़ी तो नाई बनाता था, सिर्फ साबुन लगाने का काम वह करती थी। एक अमरीकी फिल्म डायरेक्टर घूमने आया था और वह उस नाई के यहां दाढ़ी बनवाने गया। वह लड़की तो वर्षों से साबुन लगा रही थी। लेकिन साबुन लगाने वाली लड़की को देखता कौन था? वह उस डायरेक्टर की दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी। आईने में उस लड़की को देखा, और कहा, हाउ ब्यूटीफुल! और ग्रेटा गार्बो ने लिखा है कि मैं पहली दफा सुंदर हुई। उसके पहले तो मुझे इसका पता ही नहीं था। एक आदमी ने कहा कि कितनी सुंदर है, और बस सब बदल गया। वह १८ साल का समय कहां खो गया, मुझे पता नहीं! मैं दूसरी ही व्यक्ति हो गयी तत्क्षण। मैं साबुन लगाने वाली लकड़ी नहीं थी फिर। हाथ मेरा रुक गया। बात ही बदल गयी। सब कुछ बदल गया, जैसे एक नींद टूट गयी थी।

सौंदर्य का बोध फिर उसे अभिनय की खोज में ले गया। उसने लिखा है कहीं कि एक आदमी ने चलते हुए इतना सा कह दिया कि कितनी सुंदर है। इसकी मैं प्रतीक्षा कर रही थी, मेरा सौंदर्य इसकी प्रतीक्षा करता था कभी, मगर मुझे पता ही नहीं था। ऐसे ही बुद्धिमत्ता भी प्रतीक्षा करती है, लेकिन कभी कोई कहे और किसी के प्रेम में वह खिल जाए। कोई चौंका दे उस। लेकिन हालतें उल्टी हैं कि हर आदमी दूसरे आदमी को बुद्धिमान तो मानने को राजी ही नहीं है; क्योंकि उसके अहंकार को चोट लगती है। इसलिए हर आदमी हर दूसरे आदमी को बुद्धिहीन सिद्ध करने की सब तरह से कोशिश कर रहा है।

चारों तरफ से यह कोशिश चल रही है। बाप भी यह नहीं चाहता कि बेटा उससे ज्यादा बुद्धिमान हो जाए। मां भी नहीं चाहती कि उसकी बेटी भी उससे ज्यादा सुंदर हो जाए। और अगर मां के सामने ही उसकी बेटी को कोई बहुत सुंदर कह देता है, तो मां पर जो गुजरती है, उसका खयाल करना मुश्किल है।

तो, हवा चाहिए चारों तरफ और एक साइकिक एटमासफियर (मनोवैज्ञानिक वातावरण) चाहिए कि जहां चीजें पैदा हों। वह हम पिछले पांच हजार साल में पैदा नहीं कर पाए। और इसलिए अधिकतम लोग, जो बहुत सुंदर हो सकते थे, साधारण रूप में मर जाते हैं। बहुत से लोग जो बुद्धिमान हो सकते थे, साधारण रूप में मर जाते हैं। बहुत से लोग जो बिलकुल असाधारण हो सकते थे, कि जिनका होना खूबी होती जमीन पर, वह बिलकुल ही एक कोने में ऐसे मर जाते हैं कि थे या नहीं, कभी पता नहीं चलता। इसको ही में कहता हूं कि बहुत से लोग बिना आत्मा को पाए मर जाते हैं। जब आत्मा की बात करता हूं, तो मुझे यह सारा

होता है कि बहुत से लोग आत्मा पाए बिना मर जाते हैं। उनको पता ही नहीं चलता कि वह थे भी।

प्रश्न--तो, आपका मतलब यह है कि पाना दूसरों पर निर्भर है? अपने आप पर भी होना चाहिए?

ओशो--यह ठीक बात है, यह अपने पर निर्भर होना चाहिए, लेकिन निन्यानबे प्रतिशत दूसरों पर निर्भर होता है। क्योंकि जो होना चाहिए, वह है नहीं। होना तो यही चाहिए कि प्रत्येक पर निर्भर हो। लेकिन निन्यानबे प्रतिशत यह दूसरों पर निर्भर होता है। एक प्रतिशत ही स्वयं पर निर्भर होता है। और वह जो एक प्रतिशत है, वह भी आपको लगता ही है कि स्वयं पर निर्भर है। वह भी बहुत गहरे अर्थों में स्वयं पर निर्भर होता है, जैसे दोनों संभावनाएं हैं कि एक आदमी को आप कहें, बहुत बुद्धिमान है। उसकी हवा, उसके आसपास के सारे लोग उसे बुद्धिमान कहते हों, तो उसकी बुद्धिमत्ता पैदा हो जाए। और यह भी संभव है, लेकिन यह मुश्किल से संभव है कि सारे लोग उसको बुद्धिहीन कहते हों, तो वह डिफेंस में, बुद्धिमान होने की चेष्टा में लग जाएगा और सिद्ध करके बता देगा कि वह बुद्धिमान है। लेकिन यह भी दूसरे पर ही निर्भर होना है। दोनों में फर्क नहीं पड़ा। लेकिन यह संभावना बहुत कम है, सौ में एक है। और इसीलिए हमने जो समाज बनाया है वह कभी-कभी जिसको हम बुद्धिमान और प्रतिभाशाली कहें, हो पाता है। वह जो लड़कर, विरोध में खड़ा हो जाता है, सामान्यतः यह नहीं होगा।

यह ऐसा ही मामला है जैसे कि इस कमरे में हम प्लेग के कीटाणु फैला दे। पचास मित्र बैठे हैं और चालीस मित्र बीमार पड़ जाए, बाकी सब कहें, यह तो अपने पर निर्भर है, प्लेग के कीटाणुओं से क्या होता है? देखो हम भी प्लेग के कीटाणुओं में हैं, लेकिन हम बीमार नहीं पड़े। तो, यह सवाल प्लेग के कीटाणु का नहीं है। वे जो चालीस लोग बीमार पड़ गए हैं; अगर प्लेग के कीटाणु न होते, तो बीमार न पड़ते। और ये जो दस बीमार नहीं पड़ पा रहे हैं, ये भी उतने स्वस्थ नहीं हो सकते हैं, जितने की प्लेग के कीटाणु न होने पर होते। भले बीमार न पड़ गए हों, भले मर न गए हों, फिर भी उतने स्वस्थ नहीं हो सकते हैं, जितने कि ये भी हुए हैं। यानी मेरा कहना यह है कि समाज ने अब तक व्यक्ति को विकसित होने में सहायता नहीं दी है, तब कहीं दस-पांच लोग लाख-करोड़ में विकसित हो जाते हैं। अगर समाज ने मौका दिया होता, अपार्चुनिटी दी होती तो फिर लाखों लोग विकसित होते और ये दस लोग भी हजार गुना ज्यादा विकसित होते। ये तो विरोध के बावजूद इतने विकसित हो गए हैं। उनको तो कहना ही क्या था! हम खाद न डालें, और दस पौधे लगा दें, तो हो सकता है एकाध पौधे में फूल आ जाए एक गरीब सा फूल, और बाकी नौ पौधे बिना फूल के रह जाए तो हम कहें, यह तो अपने भीतर की बात है, इसमें आ गया, नौ में नहीं आया। लेकिन खाद डालने पर नौ में नहीं आता और इसमें जो फूल आता, उसका तो हिसाब लगाना मुश्किल है कि वह कैसा होगा! ऐसा कुम्हलाया हुआ फूल न होता। कुम्हलाया फूल बड़ा फूल होता। उसकी शान अगल होती। तो, मेरा कहना यह है कि यह बात तो सच है कि

भीतर हमारे संभावनाएं हैं, लेकिन संभावनाओं के लिए अवसर बड़ी कीमती बात है। और संभावनाओं के लिए लड़ना चाहिए, अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, यह भी मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन अवसर भी निर्मित हो, इसकी धारणा विकसित करनी चाहिए। लड़ना भी पड़ेगा एक-एक आदमी को।

प्रश्न--आज की प्रतिभा जो वह भविष्य की है?

यह भी आप ठीक करते हैं। असल में प्रतिभा सदा ही भविष्य की होती है। जिसे हम आज समझ पाते हैं कि प्रतिभा है, उसे हम इसलिए समझ पाते हैं कि वह प्रतिभा नहीं है और अतीत की प्रतिभाओं की कुछ नकल है। तो हम समझ पाते हैं। सच में आज जो प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा होगा, उसकी प्रतिभा को मापने के न तो आज मापदंड हैं, न आंख है, न लोग हैं, न हवा है। सौ दो सौ वर्ष लग जाएंगे।

प्रतिभाशाली आदमी की दोहरी कठिनाइयां हैं। वह अपनी प्रतिभा से सृजन भी करे, और अपनी प्रतिभा पहचानने के योग्य मापदंड और हवा भी खड़ी करे, ऐसा मरकर भी नहीं हो पाता। और अक्सर ऐसा होता है कि दो चार सौ वर्ष बीत जाने पर खयाल में आ पाता है वह आदमी। यह भी ठीक कहते हैं आप। बहुत चरम प्रतिभा की जो बात है, वह तो सदा ही भविष्य की है। और उसे स्वीकृति आज तक तो नहीं मिली, लेकिन मेरा मानना है कि समाज ऐसा होना भी चाहिए, कि चाहे हम प्रतिभा को आज बिलकुल माप न पा रहे हों, जांच भी न पा रहे हों, अनबूझ हो, न कल चांद भी पकड़ में आती हो, तो भी समाज ऐसा चाहिए कि भविष्य की संभावनाओं को आदर देता हो।

अब तक हम सिर्फ अतीत की उपलब्धियों को आदर देते रहे हैं, भविष्य की संभावनाओं को नहीं। अतीत की उपलब्धियों को आदर न दें, तो भी चल जाएगा। लेकिन सवाल यह है कि आज अगर बुद्ध की प्रतिभा पहचान ली जाए, और हम आदर भी दें, तो फर्क क्या पड़ता है? बात खत्म हो गयी है। लेकिन भविष्य की संभावनाओं को पहचानना बहुत जरूरी है, क्योंकि होनेवाला है। और अगर हम उसे पहचानते हैं, तो उसके होने में साथी और सहयोगी बन जाएंगे। वास्तविकता देखने में तो बहुत ही सरल है। एक बगीचे में फूल खिले हैं, तो कोई भी देख लेता है। लेकिन बीच की संभावनाओं को पहचानना पारखी की बात है।

समाज ऐसा भी होना चाहिए कि वह भविष्य की संभावनाओं को भी अंगीकार करता हो। और भूल-चूक के लिए राजी होता हो। क्योंकि जब भी नए रास्तों पर कोई चलता है, तो गिरता है, भूल-चूक भी करता है, भटकता भी है। यानी मेरा कहना यह है कि भटकने को एक बार ही बुरा नहीं मान लेना चाहिए, अगर हमें संभावनाओं को आदर देना हो तो। और, जितने मापदंड हमारे पास हों, उनको अंतिम नहीं मान लेना चाहिए--अगर हम संभावनाओं को आदर देना चाहते हैं। हमें इस बात का बोध होना चाहिए कि जो जाना गया है, जो पाया गया है, वह बहुत थोड़ा है उसके सामने, जो जाना जाएगा और जो पाया जाएगा। इसका बोध अगर समाज को हो, तो यह कठिनाई नहीं होगी। भविष्य की प्रतिभा को भी खयाल में रखना जरूरी है।

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--बिलकुल हो सकता है; क्योंकि जो भी सोचा जाता है, वह किसी न किसी रूप से हो सकता है। वह सोचा जा सकता है न! तो वह हो भी सकता है। यह दूसरी बात है कि कितना फासला लगे, कितनी कठिनाई हो, कितनी मुश्किल हो। अब तो मुझे लग रहा है कि जो मैं कह रहा हूं, वह बहुत शीघ्रता से हो सकता है। क्योंकि सारी दुनिया में जो कुंठा है, वह है ही इसलिए थक अधिकतम लोगों को स्वयं होने का मौका मिल नहीं पाता। और कोई कारण नहीं है। एंग्विश जो है आज की पीढ़ी का, सारा युग, सारे जगत का, वह जो परेशान है, बेचैनी है, वह बेचैनी अब भौतिक नहीं है।

गरीब मुल्कों को छोड़ दें, वहां की बेचैनी और है। वह बेचैनी अब एकदम भौतिक नहीं है। अब वह बेचैनी बहुत गहरे अर्थों में आत्मिक हो गयी है कि हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोज लेने के लिए आतुर हो उठा है। यह आतुरता इतनी तीव्र है कि अगर उसे मौका नहीं मिलता है, तो दुखी होगा, पछताएगा, आत्मघात करेगा, शराब पीएगा, मरेगा, कुछ करेगा, जहां से वह टूटेगा। यह बड़ा महत्व का मामला है कि जो व्यक्ति कुछ सृजन कर सकता है, अगर सृजन न कर पाए, तो उसकी सारी शक्ति विध्वंस बनने ही वाली है। क्योंकि शक्ति के दो ही उपाय हैं--या तो वह सृजनात्मक हो जाए, या विध्वंस मग लग जाए। अब भी सृजन शक्ति ठहर जाती है, तो वह विध्वंस बन जाती है। इसलिए मीडियाकर आदमी कभी विध्वंसक नहीं होता। जिसके पास प्रतिभा जैसी कोई चीज नहीं है बहुत, वह कभी विध्वंसक नहीं होता! क्योंकि विध्वंस के लिए सृजनात्मक शक्ति चाहिए ही और जब वह फ्रस्ट्रेट होती है, रुकती है दबाव पड़ता है टूट जाती है तो वह फोड़ने लगती है, मिटाने लगती है--जो बना सकती थी, वह मिटाने लगती है!

तो ऐसी स्थिति जो बन गयी है, उसे देखकर लगता है कि हम उस दबाव के करीब पहुंच गए हैं, जहां कठिनाई व्यक्ति की नहीं रह गयी है, जहां सामूहिक रूप से व्यक्ति कठिनाई में पड़ रहे हैं। तो इस बात की संभावना है कि दबाव में, चुनौती में, इस मरण के किनारे खड़े होने में, हो सकता है कि हम सारे ढांचे को तोड़ सके, जो बीते कल ने बनाया था। नया ढांचा दे सकें, यह कोई बहुत असंभव अब नहीं मालूम देता!

प्रश्न--ऐसा नहीं है कि लोग थक जाते हैं एक पर्टिकुलर ढंग से और एक वैल्यू, रेव्यूल्यूशन के बाद पैक हो जाते हैं? भाग्यवाद, फिर सामूहिक...

ओशा--बिलकुल थक जाते हैं। यह दूसरी बात है। क्योंकि पुराना एस्टाब्लिशमेंट सुव्यवस्थित था! बहुत डरा हुआ था, शांति से सोया हुआ था, तैयार था कोई बात न थी। यह क्रांतिकारी जो इतनी मुश्किल से सत्ता में पहुंचता है और ताकत इसके हाथ में आती है, इतनी मुश्किल से कि छीने जाने के प्रति इतना सजग और डर जाता है कि सब तरह के रास्ते तोड़ देता है, कि कहीं से कुछ गड़बड़ न हो जाए तो, क्रांतिकारी तो हमेशा सत्ता में आने पर क्रांति विरोधी सिद्ध होता है। इसलिए मेरा मानना है कि ठीक-ठीक क्रांतिकारी कभी भी एस्टाब्लिशमेंट में जाने को राजी होता! मेरा मानना है कि क्रांति कोई ऐसी घटना नहीं है कि एक तिथि में

घटती है, और फिर खत्म हो जाती है। क्रांति एक सतत प्रक्रिया है, कांन्सटेंट कंटिन्युटी है। यानी मैं ऐसा नहीं मानता कि १९१७ में फलां तारीख को क्रांति हो गयी रूस में, और फलां तारीख को चीन में, और फलां तारीख हिंदुस्तान में, और बस!

दो तरह के समाज हैं! अभी तक का जो समा है, वह असल में स्थिति स्थापक है, एस्टाब्लिशमेंट वाला ही है। उस व्यवस्था में तो उसी व्यवस्था के भीतर क्रांति दबाव से निकल आती है, फिर नयी व्यवस्था निर्मित हो जाती है। अब तक कोई क्रांतिकारी समाज निर्मित नहीं हुआ है। क्रांतिकारी समाज का मतलब यह है कि जिसमें क्रांति की कभी जरूरत न पड़ेगी, क्योंकि रोज क्रांति चलती ही रहेगी उसमें। यानी हम किसी भी दिन किसी भी चीज को एस्टाब्लिश्ड नहीं मान लेंगे, और रोज मौके रहेंगे प्रयोग के, और रोज हम बदलते रहेंगे। और जो हमने कल बनाया था, उसे मिटाने की हिम्मत हनीं रखेंगे! तो, यह तो बिलकुल ठीक है! अब तक तो यही होता रहा है, और जागे भी यही हो सकता है! लेकिन वह बेमानी है अब। पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि क्रांतियां सब असफल हुई हैं। कोई क्रांति सफल नहीं हुई, क्योंकि लगा कि सफल होती है, सहल होते ही लोग कि सब कुछ गड़बड़ हो गया! क्रांति खुद ही वह हो गई, तो उसका दुश्मन था!

अब तो हमें क्रांति की प्रक्रिया पर फिकर करनी चाहिए क्रांति करने की नहीं!

एक कांति की ही सतत गति हो! हम क्रांतिकारी चित्त पैदा करें ऐसा चित्त जो एस्टाब्लिशमेंट फार्म लेता ही नहीं है, व्यक्ति ही नहीं लेता। अगर समाज की ऐसी स्थिति, मनःस्थिति हम ढाल सकें, तो बदलती चली जाए नदी की धारा की तरह ऐसा नहीं कि नदी की धारा कल बही थी, तो अब बहना जरूरी न हरा! उसे नदी रहना है तो आज भी बहना है, कल भी बहना है! नदी रहना है तो बहते ही रहना है, और नहीं तो तालाब हो जाएगी। नदियां बने से बचेंगी तो तालाब हो कर रहेंगी।

अब तक की सब क्रांतियां तालाब बन गयी हैं, क्योंकि हमने क्रांति को एक घटना समझा है कि क्रांति कोई चीज है कि एक दफा कर लो तो निपट गए। कांति ऐसी कोई चीज नहीं है। वह ऐसी चीज है कि उसे करते ही रहो, यानी जीवन का ढंग जाए। क्रांति कोई घटना न हो, जीने का ढंग ही हो। हम जिए ही ऐसे, कि वह क्रांति बन जाए। जीने की व्यवस्था ही क्रांति तकी हो, तब ऊबने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि हम कहीं स्वीकार करके रुकते नहीं हैं।

दूसरी बात भिन्न है। ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति अपने को पा ले, तो ऊब जाए। नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता। क्योंकि व्यक्ति पूर्ण रूप से कभी अपने को पा नहीं पाता। इतना अनंत विस्तार है व्यक्ति का अपने को पाना, कि ऐसी घड़ी कभी नहीं आती, जब कोई कह दे कि मैंने अपने को पा लिया है। और ऐसी घड़ी आती है तो आदमी ऊब जाएगा। फिर ऊबना पक्का है उसका, क्योंकि जो चीज पा ली गई है, उससे हम ऊब ही जाते हैं लेकिन मेरी दृष्टि में व्यक्ति के भीतर संभावना इतनी अनंत है कि हम थककर कहने लगते हैं कि

हमने पा लिया असल में हम कभी अपने को नहीं पा पाते। यानी कोई चित्रकार यह नहीं कह सकता कि उसने यह चित्र बना दिया है, बात खत्म हो गयी अब।

रवींद्रनाथ की जिंदगी में एक बहुत बढ़िया घटना घटी है। मर रहे हैं जिस दिन, बीच बीच में बेहोश हो जाते हैं। फिर आंख खुल जाती है तो बात करने लगते हैं। गीत गाने लगते हैं। जिस दिन मरे हैं, चार दफे बेहोशी के बाद होश आया, तो फिर उठ नहीं सकते हैं, तो बोलकर गीत लिखाने लगते हैं। तो किसी ने कहा कि आप छोड़े फिकर आपने बहुत गीत लिखा लिए छह हजार आपके गीत संगीत में बंध गए हैं। ऐसा अब तक दुनिया में कभी नहीं हुआ है। शैली के दो हजार ही हैं गीत जो संगीत में बंध जाए। वह महाकवि है, तो आप महाकवि से भी महाकवि हैं। अब आप चिंता मत कीजिए। अब आप शांत रहिए। उन्होंने कहा, लोग क्या कहेंगे कि क्या इस कवि ने अपने को पा लिया? यानी मरने से पहले मर गया? न! मुझे मरने दो, और मुझे लिखने दो। यानी यह कवि होना एक प्रोसेस है। यह कोई ऐसी बात थोड़े ही है कि बस हो गया पूरा कि छह हजार गीत लिख लिए तो कंटीन्उस, मरने की आखिरी घड़ी तक वह लिख रहे हैं। और आखिरी घड़ी में जो उन्होंने कुछ बचन लिखे हैं, उनमें एक बचन बहुत अदभुत हैं कि लोग कहते हैं कि मैं महागायक हूं। लेकिन हे परमात्मा उनकी बात मत सुनना, क्योंकि वे बिलकुल गलत हैं। तभी तो मैं साज बिठा पाया था अभी गाया कहां था? अभी तो तान तबूंरा सब ठोंक-पीट कर तैयार कर लिया था, अब गाने को था कि तेरा बुलावा आ गया।

जिस आदमी को ठीक से, पक्का आ गया है व्यक्ति को गहरे अनंत में ले जाना, वह किसी दिन ऐसा नहीं पाएगा--उसको हजार जन्म दो और हजार जन्मों के बाद भी वह कहेगा कि अभी हुआ क्या? अभी तो यात्रा शुरू हुई है, अभी हम चले ही हैं, अभी पहुंच कहां गए? जिंदगी में पहुंचना नहीं है चला है सिर्फ! मृत्यु में पहुंचना है। इसलिए जिनको पहुंचने का खयाल पैदा हो जाता है, वह मर जाते हैं उसी वक्त, वे तुरंत मर जाते हैं, वे जीते नहीं। फिर ऊब जाएंगे। फिर ऊबते हैं मरने। और हम खुद अपने हाथ से मर जाते हैं, क्योंकि मरना कन्वीनिटयंट पाते हैं, मरना बड़ा सरल है।

किसी आदमी ने दस किताबें लिख ली, दस गीत गा लिए, बात खत्म हो गयी। निश्चित हो गया, प्रतिष्ठित हो गया, लोगों ने आदर दिया। वह बैठ गया, पहुंच गया। मंजिल पा ली उसने। अब मरा। अब मर ही गया। यानी यह मुझे ऐसा लगता है, जैसे कि एक आदमी साइकिल चला रहा है, तो ऐसा नहीं है कि पैडल कोई वक्त पर रोक ले और कहे कि बस ठीक है, अब चलना हो चुका। पैडल रोक ले, और साइकिल चल जाए, ऐसा नहीं होने वाला है। वह साइकिल चला रहा है पूरे वक्त, क्योंकि पैडल चल रहा है। जिस क्षण पैडल रुका, साइकिल रुकी। यानी साइकिल का चलना पैडल के चलने से अलग बात नहीं है।

तो, वह तो जिंदगी की गति है, वह हमारी आत्म-खोज से भिन्न चीज नहीं है। वह चल रही है तो जिंदगी है। नहीं तो हम गए। और बहुत लोग मर जाते हैं। और बहुत लोग जो हम कहें कि कुछ उपलब्ध कर लेते हैं, वह बहुत जल्दी मर जाते हैं। क्योंकि उपलब्धि हुई और

बात खत्म हो गयी। और उसके मरने का कारण यह है कि बहुत कम है यह उपलब्धि! तो मैं कह रहा हूं कि अगर इसके अनंत फैलाव हों, और हर व्यक्ति उपलब्ध कर रहा हो, तो कोई इतनी जल्दी ठहरेगा नहीं। कोई नहीं ठहरेगा। लेकिन अभी ठहर जाता है। क्योंकि पीछे लोग दिखाई पड़ते हैं और हम एक शिखर पर, जहां कोई भी नहीं है। बिलकुल ठीक है। खत्म हो गया यह।

ऐसा मुझे कभी भी नहीं लगता है कि हम कभी भी अपने को पा लेते हैं।

प्रश्न--ऐसे व्यक्ति जिनके हमें दर्शन हुए, जैसे गांधी, टैगोर, अरविंद, इनकी प्रतिभा को आप संपन्न मानते हैं? उनकी प्रतिभा जो भी, वे देश के लिए, समाज के लिए, उनके खुद के लिए वह संपन्न थी या नहीं?

ओशो--दोत्तीन बातों पूछ रहें हैं आप। पहली बात तो यह है कि प्रतिभा सदा उस व्यक्ति के लिए सार्थक और संपन्न होती है, जिसकी है। और दूसरे के लिए सदा बांधने वाली सिद्ध होती है, रोकने वाली सिद्ध होती है। प्रतिभा जो है, वह जिस व्यक्ति के भीतर है, उसके लिए तो समृद्धि और सार्थकता देने वाली होती है। लेकिन दूसरों को सदा बांधने वाली और रोकने वाली सिद्ध होती है। अब तक ऐसा होता रहा है। जैसे गांधी जी की प्रतिभा गांधीजी के लिए तो आनंद है, लेकिन गांधी वादियों के लिए बिलकुल कारागृह है। उनको बांध दिया बुरी तरह, कस दिया बुरी तरह।

तो, मैं जिस प्रतिभा की बात कर रहा हूं, मेरा कहना यह है कि ऐसी मनोदशा होनी चाहिए समाज की कि प्रतिभा का आदर हो, स्वागत हो, सम्मान हो, अनुमान न हो। उसके पीछे कोई न जाए। क्योंकि जब भी आप प्रतिभाशाली के पीछे गए, तो आप अपनी हत्या करते हैं। आप मिटते हैं। आपका व्यक्तित्व गया। आप गए। और इसलिए अनुयायी बनाना मैं आत्मघातक मानता हूं किसी का भी बड़े से बड़े का भी। इसलिए दुनिया में हमेशा जो बड़े लोग होते हैं, जैसा अब तक हुआ है, तो उसके पीछे दस पीछे साल के लिए बड़े अंधेरे का युग आता है। उसका कारण है। वे बड़े लोग इस तरह बुद्धि को कुंठित कर जाते हैं कि पांच-पचास साल लग जाते हैं। उससे छूटने में और बचने में। इधर गांधी से बचने में पचास साल लगेंगे इस मुल्क को। तब कहीं झंझट छूटेगी। और गांधी से छूटने की जरूरत न पड़ती, अगर आप न बंधते।

यह सवाल गांधी से छूटने का नहीं है, आप बंध गये हैं इसलिए उपद्रव है। गांधी ठीक है और वह अदभुत व्यक्ति हैं, बात खत्म हो गयी। अरविंद ठीक है, और रवींद्रनाथ ठीक है और ऐसे हजार लोग होने चाहिए। फिर जब हम पूछते हैं यह बात, हमारे मन मैं खयाल ही यह होता है कि क्या इनका अनुगमन किया जाए? गांधी अगर ठीक है तो हम पूछते हैं इसलिए क्या इनके पीछे चले? मैं मानता हूं कि कोई भी ठीक हो सकता है, लेकिन पीछे चलना कभी ठीक नहीं है। और ठीक होना व्यक्तिगत या निजी घटना है। पीछे नहीं जाना है आपको। पीछे गए कि गए, बुरी तरह गए। अब तक ऐसा हुआ है कि बड़ी प्रतिभाओं से फायदा तो कम, नुकसान ही ज्यादा हुआ है। फायदा हो सकता था, अगर हमने इनकी

इंडिविजुअल यूनिकनेस को स्वीकार किया होता। हमने कहा होता--राम, राम हैं, बहुत अदभुत हैं। और कृष्ण, कृष्ण हैं, बहुत अदभुत हैं। बुद्ध बुद्ध हैं, बहुत अदभुत हैं। और सौभाग्य है कि पृथ्वी पर हुए और हमने उन्हें देखा और जाना। लेकिन हम इस चक्कर में पड़ गए कि हम बुद्ध कैसे हो जाए। हम एक नकली बुद्ध हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा, और कुछ भी नहीं मेरी दृष्टि में कोई दो आदमी न तो एक जैसे हैं, और न ही हो सकते हैं, न कोई संभावना है। कोई मार्ग भी नहीं है। अगर किसी व्यक्ति ने दूसरे जैसे होने की कोशिश की, तो वह सिर्फ आवरण ओढ़ सकता है। और तब तक के सारे महापुरुष दुखदायी सिद्ध हुए, सुखदायी हो सकते थे, हो नहीं पाए। और जहरीले सिद्ध हुए। क्योंकि हमारी पकड़ यही थी कि उनका अनुगमन करो, उनको मानकर चलो, उन जैसे हो जाओ।

फिर दूसरी बात यह है कि प्रतिभाशाली जो भी कह देती है, वह प्रतिभाशाली है, इसलिए ठीक हो जाता है। ठीक होना जरूरी नहीं है। प्रतिभा बिलकुल गलत हो सकती है, और फिर भी प्रतिभा हो सकती है। यानी कुछ ऐसा नहीं है जरूरी कि प्रतिभा है किसी के पास, तो उसका ठीक होना अनिवार्य है। प्रतिभा पूरी हो सकती और बिलकुल गलत हो सकती है। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? और बहुत प्रतिभाएं गलत हुई हैं। वे प्रतिभाएं तो इतनी आकर्षित करती हैं, अभिभूत कर लेती हैं। लेकिन वे बिलकुल गलत हैं।

प्रश्न--गुरु और शिष्य की जो परंपरा चली, उस विषय में क्या खयाल है आपका?

ओशो--बड़ी खतरनाक है परंपरा और बहुत नुकसान पहुंचाया है गुरुओं ने। मेरी समझ यह है कि अच्छी दुनिया होगी, तो उसमें गुरु तो नहीं होंगे, शिष्य होंगे। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि मैं तो रास्तों को तोड़ देता हूं। गुरु तो न हों। क्योंकि ऐसा कोई भी आदमी, जिसको गुरु होने का खयाल है, पागलखाने में भेज देने जैसा आदमी है। जिसे लगता है कि मैं गुरु हूं, उसका इलाज करवाना चाहिए वह न्यूरोटिक है। लेकिन शिष्य दुनिया में होने चाहिए। शिष्य होने से मेरा मतलब है एटीटयूट आफ लर्निंग वह सभी में होना चाहिए।

एक आदमी सीखे-सीखे। शिष्य का मतलब है सीखने का भाव। तो सीखे जितना सीख सके, और मजा यह है कि गुरु सीखने में बाधा डालते हैं। क्योंकि जब भी कोई गुरु बनता है तो बांध लेता है। और तब और दिशाओं में सीखने के रास्ते बंद कर देता है। वह कहता है सीखो यहां और कहीं से नहीं। तो महावीर को जिसने गुरु बना लिया, वह मोहम्मद से नहीं सीख सकता। और मोहम्मद बहुत अदभुत आदमी है, उनसे बहुत सीखने का है। और जिसने मोहम्मद को पकड़ लिया, वह बुद्ध की तरफ आंख नहीं उठा पाएगा। और ये बड़े-बड़े गुरु हैं। छोटे-छोटे गुरु भी बहुत हैं। वे भी सब रोकते हैं।

सीखने की क्षमता और सीखने का भाव प्रत्येक में होना चाहिए, और मरने तक होना चाहिए। यानी जो आदमी जीवन भर शिष्य बना रहे, मरते वक्त तक, वह अदभुत आदमी है।

लेकिन, हमारे यहां कुछ ऐसी बात है कि आदमी जन्म से गुरु हो जाता है। शिष्यत्व तो बहुत अनोसेंट और निर्दोष भाव है। वह बहुत अदभुत भाव है। सीखने की तैयारी है। इससे बड़ी सरलता और विनम्रता हो नहीं सकती।

एक मुसलमान फकीर था बायजीद। वह जब मरने के करीब है, तो उसके शिष्यों ने उससे पूछा है, मित्रों ने उससे पूछा कि आपने कहां से सीखा कौन सा गुरु हैं? बायजीद ने कहा, अगर गुरु होता तो बहुत कम सीख पाता। गुरु कोई न था, इसलिए बहुत सीख पाया। जो भी मिला, उसी से सीखा। और ऐसा भी नहीं था कि आदमियों से ही सीखा। दरख्त से सूखा पता गिर रहा था, तो उससे भी सीखा। कल यह पत्ता हरा था और आज सुखकर गिर गया और मैं रास्ते भर सोचता चला आया, उस गिरे हुए पत्ते को देखकर गिरना पड़ेगा। और उस पत्ते को मैंने नमस्कार कर लिया कि आज तू अच्छे वक्त पर गिर गया कि मैं निकलता था। तेरी बड़ी कृपा है। नहीं तो यह खयाल ही नहीं आता कि सूखा पत्ता कल रहा था, वह कितनी अकड़ और शान में था, फिर सूखकर गिर गया जब मैं गुजरता था। क्यों समझ में आयी है यह बात कि अभी हरे हैं, कल सूख जाएंगे।

बायजीद ने कहा, एक बार मैं एक गांव गया, रात के कोई बारह बज गए। मैं भटक गया रास्ता, तो गांव में कोई नहीं मिला। एक चोर मिला चोरी पर निकला था। मैंने उससे पूछा कि मित्र रास्ता बता सकोगे? मैं कहां जाऊं कहां ठहरूं? रात अंधेरी है, मुझे कुछ पता नहीं है! उस चोर ने कहा तुम साधु मालूम पड़ते हो। क्योंकि साधु होना ऊपर से दिख जाता है। लेकिन तुम्हें पता नहीं किससे पूछ रहे हो। मैं चोर हूं। और चोर होना ऊपर से कभी नहीं दिखता। वह तो भीतर होता है। तो तुम मुझे पहचान नहीं पाए हो। फिर भी मैं तुम्हें बता दूं कि मैं चोर हूं, अगर तुम्हारी मर्जी है तो तुम मेरे घर ठहर सकते हो। घर खाली है, और मैं रात भर तो बाहर रहूंगा।

बायजीद ने कहा अपने मित्रों से कि मैंने उस दिन पहली दफा जाना कि चोर की इतनी हिम्मत हो सकती है कि कह दे कि मैं चोर हूं, साधु इतनी हिम्मत से कह नहीं सकता कि मैं साधु हूं क्योंकि मेरे भीतर चोर मौजूद था, तभी वह कह सका कि मैं चोर हूं, नहीं तो कहना बहुत मुश्किल था। एकदम मुश्किल था। तो मैंने उसके पैर छू लिए। वह कहने लगा, यह आप क्या करते हैं? मैंने कहा कि मैं तेरे पैर छूता हूं। क्योंकि स्वयं को चोर कहने की हिम्मत सिर्फ साधु में होती है। चल, मैं तेरे घर चलता हूं।

मैं उसके घर गया। वह मुझे सुलाकर चला गया। वह पांच बचे के करीब लौटा। नींद खुली तो मैंने पूछा कि कुछ मिला? कुछ लाए? तो वह कहने लगा, आज तो नहीं, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे। फिर वह सो गया। वह दिन भर सोया रहा। दोपहर को उठा तो बड़ा मस्त था, नाचता था, गाता था। मैंने उससे कहा, कुछ मिला नहीं ? फिर कल मिल जाएगा? फिर रात गयी, मैं महीने भर से उसके घर था। और हर बार यह हुआ कि सुबह वह आया और मैंने पूछा, कहो कुछ मिला, और वह कहता आज नहीं मिला, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे। महीने बाद मैंने छोड़ दिया उसका घर। फिर मैं भगवान की शोध में वर्षों

भटकता रहा और बार-बार ऐसा होने लगा कि नहीं मिलता, तो छोड़ यह खयाल। तभी उस चोर का खयाल आ जाता कि वह आदमी रोज लौट कर कहता था कि कल फिर कोशिश करूंगा। वह तो साधारण धन चुराने गया था, फिर भी हिम्मत बड़ी थी। हम भगवान को चुराने चले थे और बड़ी कमजोर है, कैसे काम चलेगा? तो फिर मैं टिका ही रहा, और जब भी हारने लगता मन, तो फिर उस चोर का खयाल आ जाता, जो कहता कि कल और कोशिश करेंगे। तो उस चोर से जो मैंने सीखा था, उसी से परमात्मा को पाया, नहीं तो पा नहीं सकता था। तो उसने मरते वक्त ऐसी बहुत सी बातें कहीं, क्योंकि बहुत से गुरु मिले उसे।

एक गांव से गुजरता था, एक छोटा सा बच्चा दिया लिए जा रहा था। पूछा उससे, कहां जाते हो दिया लेकर? उसने कहा, मंदिर में जाना है। तो मैंने उससे कहा, कि तुमने जलाया है दिया? तो उसने कहा, मैंने ही जलाया है। मैंने उससे पूछा जब तुमने ही जलाया है, तो तुम्हें पता होगा कि रोशनी कहां से आयी है। बता सकते हो? तो उस बच्चे ने नीचे से ऊपर तक मुझे देखा। फूंक मार कर रोशनी बुझा दी और कहा कि अभी आपके सामने चली गयी, बता सकते हैं, कहां चली गयी है? तो मैं भी बता दूंगा कि कहां से आयी थी। तो मैं सोचता हूं, वही चली गयी होगी, जहां से आयी थी। उस बच्चे ने कहा कहां चली गयी होगी?

तो, उस बच्चे के पैर छूने पड़े। और कोई उपाय न था। नमस्कार करना पड़ा। कि तू अच्छा मिल गया। हमने तो मजाक किया था, लेकिन मजाक उल्टा पड़ गया बहुत भारी पड़ गया। अज्ञान इस बुरी तरह से दिखाई पड़ा, लेकिन ज्योति का पता नहीं चला कि कहां से आती है और कहां जाती है! और हम बड़े ज्ञान की बातें किए जा रहे हैं। उस दिन से मैंने ज्ञान की बातें करना बंद कर दिया। क्या फायदा? जब एक ज्योति का पता नहीं तो भीतर की ज्योति की बातें करने में मैं चुप रहने लगा, उससे बच्चे ने चुप करवाया। हजारों किताबें पढ़ी, जिनमें लिखा था कि मौन रहो। नहीं रहा लेकिन उस बच्चे ने ऐसा चुप करवा दिया कि कई वर्ष बीत गए, मैं नहीं बोला। लोग पूछते थे, बोलो। तो मैं लिख देता था कि दिए की ज्योति कहां जाती है बताओ? मतलब क्या बोलने का? कुछ पता नहीं है तो बोलूं क्या?

तो इसको मैं कहता हूं, एटीटयट आफ लर्निंग और डिसाइपलशिप, शिष्यत्व। गुरु तो बिलकुल नहीं होने चाहिए दुनिया में, सब शिष्य होने चाहिए। और अभी हालत यह है कि गुरु सब हैं, शिष्य खोजना बहुत मुश्किल है।

प्रश्न--हमें यह उत्सुकता होती है जानने की कि आप सक्सेस हुए, क्या करते थे, आपकी शुरुआत कैसे हुई, कहां से आपने यह चालू किया? लोगों के खयालातों का चैनेलाइज करने का कब से खयाल हुआ आपको? किस खयाल से शुरू किया?

ओशो--बहुत कठिन बात पूछते हैं। कठिन कई कारणों से है। एक तो यह कि जिंदगी कुछ ऐसी चीज है कि वह ठीक कहां से शुरू होती है, कभी बताया नहीं जा सकता। यानी जहां से जिन्हें शुरू होता है, वे कहते हैं। वह हमेशा माना हुआ बिंदु होता है। और दूसरी कठिनाई यह है कि अपने संबंध में कुछ भी कहना बड़ा मुश्किल मामला है। हां, इसलिए कठिन है कि

दूसरे को तो हम बाहर से देखते हैं तो तसवीरे आंक जाती हैं। प्रतिबिंब होते हैं हमारे पास। कल और था, परसों और था। हम अपने ऊपर कभी देखते नहीं। और भीतर अपनी कोई तसवीर नहीं आंकती। वह तो एक धारा ही होती है! अलग-अलग नहीं होते हैं। तो भी मुश्किल हो जाता है और फिर जन भी हम बताना चाहते हैं तो और मुश्किल हो जाता है। वह जब हम बताने जाते हैं तो कुछ खंडों को छू पाते हैं और बीच के हिस्सों में गैप रह जाते हैं, और उनमें कई बार जोड़ दिखाई नहीं पड़ता। जैसे कि कोई सीढ़ियां जा रही हों हजारों, और उसमें दस-पांच सुंदर सीढ़ियां बताना, बीच की सीढ़ियां जाए, तो उन सीढ़ियों के बीच कोई तुम, कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ रहा है। फिर भी कोशिश की जा सकती है कि क्या हुआ।

जो पहली से पहली बात मेरे खयाल में आती है, चारों तरफ एक अदभुत झूठ का बोध होना जरूरी है। जो पिता कह रहे हैं उसमें, जो मां कह रही है उसमें, जो मित्र कह रहे हैं उसमें, जो शिक्षक कह रहे हैं। उसमें। फिर लगा कि चारों तरफ एक गहरा झूठ सबको घेरे हुए है और यह समझ में आना शुरू हुआ कि वह झूठ मुझे भी घेरे हुए हैं। यही मैं जिस ढंग से देखता हूं, वह झूठ था। क्योंकि भीतर से मैं कुछ और ढंग से देखना चाहता था। और जो बात मैंने कहीं, वह थी ही नहीं। रास्ते पर एक आदमी मिला और कहा नमस्कार! आपको देखकर बड़ी खुशी हुई भीतर से मन में हो रहा था, यह आदमी कहां से दिख गया सुबह-सुबह, कहीं दिन खराब न हो जाए। तो भी दिखाई पड़ना शुरू हुआ, वह चारों तरफ का जो झूठ है, वह मुझको भी पकड़ रहा है। और अगर जल्दी जागे नहीं, तो फिर शायद पकड़ ही लेगा। फिर उससे छूटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। सब तरफ से घेरे लिए चला जाता है। जिससे कोई प्रेम नहीं, उससे कह रहे हैं, बहुत प्रेम है।

जो मुझे पहला बोध होना शुरू हुआ बहुत छोटी उम्र से, वह यह था कि एक अजीब झूठ चारों तरफ पकड़े हुए हैं कि घर में लोग बैठे हुए हैं, वहां छोटे बच्चे से बाहर कहलवा देते हैं कि वह घर पर नहीं हैं। फिर मुझे बाहर भेजते हैं देखने कि देख लेना कौन है। अगर फलां आदमी हो तो कहना घर में हैं, और फलां आदमी हो तो कहना घर में नहीं है। तो होता है! यह घर में होना सचाई है या कि झूठ है, जो कि कोई होता है तो आदमी घर में है कोई होता है तो घर में नहीं हैं।

मुझे जो पहला स्मरण आता है वह यह कि चारों तरफ सब चीजों में एक अजीब झूठ हैं। मुझे मंदिर में ले जाया गया है, मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ रही है, और घर के लोग कह रहे हैं, भगवान। फिर झूठ मालूम पड़ रहा है कि बिलकुल पत्थर की मूर्ति है, इसको मैंने बाजार में बिकते भी देखा है। यह बाजार से खरीद करके मंदिर में लायी जाती है। भगवान कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, और घर के लोग हाथ जोड़े हुए हैं। इनका हाथ जोड़ना एकदम झूठ मालूम पड़ रहा था। सरासर झूठ मालूम पड़ रहा था। जो मुझे पहला खयाल आता है, जो मुझे बचपन पकड़ना शुरू हो गया, वह यह कि फाल्स सूडो है जो चारों तरफ सबको पकड़े हुए हैं। और जैसे-जैसे बड़ा होने लगा, वैसे-वैसे मुझे दिखाई पड़ने लगा कि सब

तरफ एकदम घना झूठ है मुझे पकड़ लेगा, और अगर झूठ पकड़ लेता है, तो फिर जीवन में सत्य की खोज को कोई रास्ता नहीं रहता है।तो वह क्या है, इसका पता ही नहीं चलेगा कभी। और पता चलता है ही नहीं।

लंदन में एक फोटोग्राफर था। वह अपने दरवाजे पर तख्ती लगाए हुए है। और उसमें दाम लिख रखे हैं, और लिख रखा है कि आप जैसे हैं, अगर वैसा फोटो उतरवानी हो, तो पांच रुपए, और जैसे आप दिखाई पड़ना चाहते हैं, वैसी फोटो उतरवानी हो तो दस रुपए। और जैसा आप सोचते हैं कि आप हैं, अगर वैसी फोटे उतरवानी हो तो पंद्रह रुपए। एक आदमी गया उसी दुकान पर। उसने कहा, बड़ी मुश्किल है। हम तो सोचते हैं, फोटो एक ही तरह की होती है। मेरी फोटो एक ही तरह ही होगी, इतने प्रकार की कैसे हो सकती है? और यहां ऐसे लोग भी आते हैं कि १५ और १० रुपए वाली फोटो भी उतरवाते हैं। उस फोटोग्राफर ने कहा, आप पहले आदमी हैं, जो पहले नंबर की फोटो उतरवाने का खयाल कर रहे हैं। यहां अब तक कोई आया नहीं, जिसने पहले नंबर की फोटो उतरवायी हो।

मुझे यह बोध एकदम से गहरा पकड़ने लगा रोज-रोज, और उससे बड़ी अड़चन शुरू हो गयी, परेशानी शुरू हो गयी। क्योंकि जहां-जहां वह मुझे दिखाई पड़ने लगा, वहीं मुश्किल शुरू हो गयी। घर के बुजुर्गों से कहने लगा, यह क्या मामला है? शिक्षकों से कहने लगा, यह क्या बात है? तब एक बात मुझे इतनी साफ दिखाई पड़ने लगी कि यह झूठ अगर मुझे पकड़ लेता है, तो जिंदगी खो ही गयी। तो जैसा हूं, वैसा दिखाई पडूं और जैसा मुझे दिखाई पड़े, वैसा कहूं। जैसा मुझे ठीक लगे, उसको वैसा ही जीऊं, चाहे उसका कोई भी परिणाम हो। एक बात पक्की है, मैं झूठ होने को राजी नहीं हूं। मैं जैसा हूं, वैसे रहूंगा। तो फिर किसी चीज पर विश्वास करना मुश्किल हो गया कि भगवान है, कि आत्मा है, कि पिछला जन्म है, कि कर्म है--किसी भी चीज पर विश्वास करना मुश्किल हो गया। क्योंकि सब विश्वास मुझे झूठे मालूम पड़े। वास्तव में विश्वास झूठ का दूसरा नाम है। जो आपको नहीं मालूम होता, नहीं दिखाई पड़ता, उसको मान रहे हैं, वह झूठ है।

इतना पढ़ा मैंने कि कहीं से कुछ पता चल जाएगा। इतने लोगों के पास गया, इतने लोगों से मिला, इतना भटका कि कहीं से कोई बता सकेगा। तो यह सब धीरे-धीरे पता चला कि कोई दूसरा शायद बता भी नहीं सकता। तो एक बात पक्की मेरे मन में जम गयी कि विश्वास नहीं करूंगा। जान लूंगा तो जान लूंगा, नहीं जानूंगा तो अज्ञानी रहूंगा। विश्वास नहीं करूंगा। और उसने तो कुछ ऐसी हालत में पहुंचा दिया था कुछ दिन कि घर के लोग समझते थे कि मैं पागल हो गया, क्योंकि ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर भी मुझे शक होने लगा। जैसे मैं अपने पिता से पूछने लगा कि इसको मैं कैसे मानूं कि आप मेरे पिता हैं? मुझे क्या पता? और क्यों मानूं? और जब किसी चीज पर विश्वास न करने की हिम्मत कर ली, तो अड़चन होना स्वाभाविक ही था। सब तरफ अड़चन आ गयी और साथ ही भीतर एक वैक्यूम का आना शुरू हो गया। जब हम किसी चीज पर विश्वास ही न करे, तो भीतर कौन सी चीज को पकड़ें? किसको पकड़ें? क्या हो भीतर? पकड़ने का कोई उपाय नहीं रहा कि कोई सहारा बना लें,

कि कोई विचार पकड़ लें, धर्म पकड़ लें, संप्रदाय पकड़ लें, कोई किताब गीता, कुरान कोई तो सहारा बन जाए।

तो भीतर एक वैक्यूम आया। एक वर्ष मैं बिलकुल वैक्यूम में ही था। वैक्यूम में--मतलब आप आकर बैठ जाए और कोई मुझे पता नहीं कि आप आ गए हैं। आपको देख रहा हूं कि आप आ गए हैं। आप बैठे हैं। आप चले गए। लेकिन कल आप मुझे पूछें कि आप आए थे, तो मुझे पता नहीं रहता था। यानी आंखें बिलकुल ऐसी हो गयी जैसे दर्पण हो--कोई आया और कोई गया। और एक वर्ष तक शायद मैं ज्यादातर पड़ा ही रहा। उठा भी नहीं; क्योंकि जब कोई विश्वास ही न रहा, तो यह भी होने लगा कि घर के लोग कहते हैं कि खाना खा लो, तो मैं कहता, खाया तो ठीक, नहीं खाया तो ठीक; क्योंकि खाना खाने से किसको क्या मिल गया है? वे कहते कि उम्र कम हो जाएगी, शरीर कमजोर हो जाएगा, मर जाओगे बीमार पड़ जाओगे। तो मैं उनसे पूछता कि आपको पक्का भरोसा है कि आप खाना खाते रहेंगे, तो मरेंगे नहीं? अगर ऐसी बात हो तो मैं कल से खाना खा लूं। आप मुझे ऐसा बता दें कि लोग खाना खाते रहे वे नहीं मरे, तो मैं भी खाना खा लूं। और जिंदा रहकर आपको क्या मिल गया है, जो मुझे जिंदा रहने की आप सलाह देते हैं?

धीरे-धीरे घर के लोगों ने भी छोड़ दी फिकर कि जो कहना हो करो, न करना हो न करो। और तब उस वैक्यूम में मैं बिलकुल आटोमेटा जैसा हो गया, यानी मैं उठकर क्यों जा रहा हूं, कहां--यह भी मेरे खयाल में न रहा। बस चीजें आटोमैटिक हो गयी। प्यास लगी है, तो जाकर पानी पी लिया है। भूख लगी है तो जाकर चौके में बैठ गया हूं। नहीं लगी तो दो दिन गुजर गए, चार दिन गुजर गए। स्नान करने गया हूं तो घुटो गुजर गए, दिन गुजर गए, स्नान ही करता रहा हूं। घर के लोगों ने समझा कि पागल हो गया है। मुझे भी बीच-बीच में बस एक ही शक दोहरता रहा, लोगों की आंखों में देखकर कि शायद मैं पागल हो गया हूं। लेकिन मैंने कहा कि ठीक है, अगर पागल हो जाना है, तो हो जाना ही ठीक है।

वह शून्य जितना बढ़ता चला गया करीब दो या तीन बार मैं कई दिनों तक कोमा में चला गया, यानी दो-चार दिन बेहोश ही पड़ा रहा, होश ही नहीं रहा। लेकिन मैंने इससे भोगने की कोशिश नहीं की। क्योंकि मैंने सख्त मान लिया था कि जो भी हो, मैं जानना ही चाहता हूं--या तो मर जाऊं, या जानूं। एक वर्ष तक निरंतर इस शून्य में गुजरते-गुजरते, एक दिन कोई आधी रात होगी, एकदम से उठ पड़ा हूं--और कोई चीज एकदम से फूट गयी, कोई बंद द्वार खुल गया। ऐसा हुआ जैसे कोई दिया एकदम से जल जाए और अंधेरे में चीजें दिखाई पड़ने लगें। ऐसा होने के बाद सब बदल गया। ऐसा होने के बाद मैं एकदम नार्मल हो गया। एकदम चुपचाप, सीधा, नार्मल हो गया।

उस दिन के बाद कोई अविश्वास न रहा तो विश्वास भी न रहा। दोनों ही चले गए। और एक सीधी दृष्टि हो गयी। अब मेरे साथ कोई पक्का नहीं है खयाल मुझे कि क्या कहूंगा आज से। आप कोई बात पूछ लेते हैं, तो मुझे दिखाई पड़ने लगता है। और जो मुझे दिखाई पड़ता है वह मैं कह देता हूं। उसमें मुझे भी पता नहीं कि इस शब्द के बाद दूसरा शब्द क्या आएगा

और इसके बाद क्या कहूंगा, इसका मुझे पता नहीं है। और जब कोई नहीं है, तब मैं बिलकुल खाली हूं। जब कोई आ गया है तो सोच-विचार खत्म ही हो गया। यानी जब बोल रहा हूं, तब यह विचार है। नहीं बोल रहा हूं, तो बिलकुल मौन हूं। फिर इतनी अदभुत शांति और ऐसे आनंद का अनुभव हुआ है कि मैंने ईश्वर का अर्थ ही यही कर लिया, और जीने का एक बिलकुल नया ही आयाम। खाना भी खा रहा हूं, तो ऐसा नहीं है कि खाना मेरे लिए छोटा आनंद है। उतना ही आनंद है, जितना परमात्मा का है। आपसे बात कर रहा हूं, तो आनंद मुझे उतना ही है कि जितना परमात्मा से बात करूं, उसमें मेरे लिए फर्क नहीं है। सोया हूं तो उसमें भी आनंद है।

अब जो भी कर रहा हूं, यानी अब ऐसा नहीं है कि कोई मेरे लिए धार्मिक कृत्य है और कोई अधार्मिक कृत्य है--कोई सांसारिक बात है, और कोई पारलौकिक है। छोटी से छोटी चीज में भी, और सब चीजों में रस है। मैं ऐसी चीजों में विरस हूं ही नहीं। वैराग्य जैसी चीज ही नहीं है। किसी भी चीज में मुझे विराग है, और सभी चीजों में है। अब तो मैं वैराग्य की परिभाषा ही यह करने लगा हूं कि राग हो जाए, तो वैराग्य हो जाता है। और स्वाद अगर पूर्ण आ जाए, तो स्वाद से मुक्ति हो जाती है।

तो, अब तो जो भी चीजें हैं, उसको कैसे पूरा करूं--उस पर पूरा ही रुक जाता हूं। खाना खा रहा हूं, तो पूरा खा रहा हूं, यानी उस वक्त सिर्फ खाना ही खा रहा हूं, कुछ और हनीं कर रहा हूं। सो रहा हूं, तो बस सो ही रहा हूं। कल की कोई बात करता है तो ही मुझे कल का खयाल आता है; नहीं तो कल जब आएगा तक उसको देख लेंगे। अभी जो है--आपके घर ठहरता हूं, तो आप मेरे परिवार के हैं। मुझे याद ही नहीं रहता कि किसी दूसरे के यहां हैं। और जब आपका घर छोड़कर गया, तो फिर आप मुझे याद ही हनीं आते कभी। फिर आऊंगा दुबारा, तो फिर ऐसे लगेगा कि आप ही के साथ रहता था। और बिलकुल याद आ जाएगा और पूरे याद आ जाएंगे। किसी को भूलता ही नहीं और किसी को याद भी नहीं करता कभी। यानी एक तो भूलना ऐसा होता है कि हम किसी की याद करते रहते हैं तो नहीं भूलते। तो कभी किसी को याद ही हनीं करता। तो जब वह सामने आ जाता है, तो याद आ जाता है। जब वह चला जाता है, तो उसी के साथ याद भी चली जाती है। जैसे एकदम खाली मकान हो, वैसी हालत हो गयी है।

लेकिन अब तो न कुछ छोड़ने का मन है, न कुछ पकड़ने का है। न किसी के पक्ष में हूं, न किसी के विपक्ष में। और यह भी पक्का नहीं है कि जो आपसे कहता जो आपसे कहता हूं, उसका आग्रह भी नहीं है कि उसे कोई माने। क्योंकि मैंने तो सब ना मानकर एक दिशा पायी है। इसलिए तो लोगों से कहता रहता हूं कि जहां तक बने, किसी को मानना मत। मुझको भी मत मानना, मानना ही मत। और न मानने में ठहरने की कोशिश करना। और अगर ठहर गए कभी न मानने में, तो वह हो जाएगा जो जानना है। माननेवाला कभी जानने तक नहीं पहुंचता है।

और जिस दिन से यह हुआ, उस दिन के पहले मैं किसी से बात ही नहीं करता था। यानी मुझसे बात करवाना ही मुश्किल था। यानी ऐसा भी हो जाता था कि कोई मित्र आ गया है, और जबर्दस्ती मुझे हिला रहा है और कहता है कि इस बात का मुझे जवाब दो, वह बैठा है, मैं देख रहा हूं, कोई जवाब नहीं है। और यह भी नहीं कहूंगा कि मैं नहीं कहता हूं, नहीं कहूंगा। मुझे कोई रुचि भी नहीं थी किसी और में।

लेकिन उस विस्फोट के बाद एक और अजीब घटना घटी है, और वह यह कि यह अनुभव होना शुरू हुआ कि आनंद को जितना बांट दो, उतना बढ़ जाता है। तो अब ऐसा नहीं है कि मैं किसी के माइंड का चैनेलाइज कर रहा हूं। मुझे जो लगता है, कह देता हूं और अपने रास्ते पर चला जाता हूं। फिर उस कहने के पीछे यह भी नहीं है कि आपने उसे ना पकड़ा, स्वीकार किया। आपसे कोई संबंध ही नहीं बांधता कि कोई मेरा शिष्य हुआ, कि कोई मेरा अनुयायी हुआ कि कोई मेरा साथी हो गया। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बस बात इतनी है कि आपने मुझे सुन लिया, मेरी बात सुन ली और मेरे भीतर जो--जैसे कोई बादल भर जाए पानी से, तो बरस कर धरती पर कोई कृपा नहीं करता, बल्कि धरती कृपा करती है कि बरस जाने देती है।

प्रश्न--जे कृष्णमूर्ति और आपके विचार कहां तक मिलते हैं?

मिल सकते हैं, बहुत से विचारों से मिल सकते हैं। दुनिया में किसी समझदार आदमी का किसी फालोंअर से खयाल नहीं रहा--कभी नहीं। लेकिन फालोअर सभी को मिल जाते हैं--जे कृष्णमूर्ति को भी और सबको भी। विचार मेल खा सकते हैं बहुत से। सच तो यह है कि अगर मैं कुछ जान रहा हूं, तो यह हो नहीं सकता कि वह दूसरे जाननेवालों से मेल न खाता हो। यह हो ही नहीं सकता। अगर मैं जान रहा हूं, तो वह मेल खाएगा ही। यह हो सकता है कि युग बदलते हैं, भाषा बदल जाती है, शब्द बदल जाते हैं, कहने के ढंग बदल जाते हैं। और फिर एक-एक व्यक्ति का अपना-अपना माध्यम होता है।

बुद्ध और महावीर एक साथ थे बिहार में, और कई बार ऐसा हुआ, एक ही गांव में ठहरे, और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक ही धर्मशाला के आधे हिस्से में बुद्ध ठहरे हुए थे और आधे मग महावीर ठहरे थे। और दोनों ही बड़ी उल्टी बातें बोलते हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन दोनों बिलकुल एक ही बात बोल रहे हैं। मुझसे किसी ने पूछा कि जब एक गांव में और एक ही धर्मशाला में बुद्ध और महावीर ठहरे थे, तो मिले क्यों नहीं? तो मैंने कहा, मिलने की कोई जरूरत न थी। मिलने की जरूरत वहीं होती है, जहां कुछ भेद हो। वहां कोई भेद न था, मिलने की कोई जरूरत न थी। शब्द बिलकुल अलग-अलग हैं और बहुत उल्टे भी हैं। महावीर कहते हैं कि आत्मा को पा लेना सबसे बड़ा ज्ञान है, बुद्ध कहते हैं कि आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है। उनके कहने का तरीका बिलकुल भिन्न है। महावीर कहते हैं आत्मा को पा लेना सबसे बड?ा ज्ञान है। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि तुम नहीं हो आत्मा। तुम अहंकार हो, उसको छोड़ दो, उसको नष्ट हो जाने दो, तो आत्मा मिल जाएगी। और बुद्ध

आत्मा से ही इनकार करते हैं। वे कहते हैं--आत्मा को छोड़ दो, तो वह मिल जाएगा जो है, और तब कोई दिक्कत नहीं रहेगी।

असल में दुनिया में जिन्होंने जो कुछ कभी जाना हो, उनके शब्दों में रत्ती भर का कोई भेद नहीं हो सकता है--होने का कोई उपाय नहीं है। अगर भेद दिखता है, तो वह हमें दिखता है। हमारे पास सिर्फ शब्द होता है, अनुभूति नहीं होती है। और शब्द में भेद हो सकते हैं। अनुभूति में कोई भेद नहीं है। हम कहने जाते हैं तो भेद शुरू हो जाते हैं।

लाओत्से ने जिंदगी भर नहीं लिखा कुछ। बहुत लोगों ने कहा कि लिखो। उसने कहा, पहले बहुत लोग लिख चुके हैं, क्या उससे कुछ फायदा हुआ? अगर उससे कोई फायदा नहीं हुआ, तो मुझसे और क्यों कागज खराब करवाते हो? मैं नहीं लिखता। अस्सी वर्ष का हो गया तो चीन छोड़कर जा रहा था। तो चुंगी पर रोक लिया गया चीन के। कहा मैं लिखे देता हूं; लेकिन जो मैं जानता हूं, उसमें पहली बात यह कि लिख नहीं सकता और दूसरी बात, अगर किसी तरह कोशिश भी करूं, तो तुम कभी पढ़ नहीं पाओगे। तुम वही पढ़ सकते हो, जो तुम जानते हो। उससे ज्यादा तुम कैसे जानोगे? और मुझे एक आदमी दिखाई नहीं पड़ता, जो मेरी किताब पढ़कर जान लेगा--तो क्यों मेहनत करवाते हो? लेकिन उसकी बात नहीं मानी गयी। तो उसने एक किताब लिखी है--ताओ तेह किंग। एक छोटी सी किताब है यह। इससे छोटी किताब नहीं है दुनिया में और इससे कीमती किताब भी हनीं है। कीमती इस लिहाज से कि पहला वाक्य उसने लिखा, कि मुझे बड़ी दिक्कत में डाल रहे हो। सत्य कहा नहीं जा सकता। और मैं कहने जा रहा हूं। और जैसे ही कहा जाता है, वैसे ही सब गड़बड़ हो जाता है। तो वह जो जानता है, वह इतना बड़ा है और शब्द इतना छोटा है कि जैसे कोई सागर को जाने और एक प्याली में भरकर आ जाए घर, तो जो घर ले आए उसे किसी को बताए कि यह सागर है तो प्याली में देखे वह सागर को, तो जितना जान ले उतना भी शब्द में नहीं जाना जा सकता। लेकिन जो भी जीवन में कभी जाना है, वह एक ही है, वह दो हो नहीं सकता।

शब्द बदलते रहेंगे, रोज बदलते रहेंगे। गीता में जो है, कुरान में जो है, बाइबिल में जो है, महावीर में, बुद्ध में वह यह है कि हम जानें, तो ही खयाल में आता है, नहीं तो नहीं आता। और उसे अगर पाना हो, जानना हो, तो किसी को पकड़ मत लेना--महावीर को या बुद्ध को या कृष्णमूर्ति को, मुझको या किसी को भी। पकड़ा कि खो गया। पकड़े कि बाकी चीज पकड़ ली और गए। तो सारी चेष्टा यह नहीं है कि मैं आपको कहकर कुछ समझा दूंगा। कहने की सारी चेष्टा यह है कि शायद थोड़ी सी बेचैनी आप में हो जाए। और उसमें एक गति शुरू हो जाए और आप चल पड़ें, तो यात्रा शुरू हो जाए। तो यह जो आप कहते हैं, चैनेलाइज नहीं कर रहा हूं।

प्रश्न--यह जो आप बोल रहे हैं, इसका कोई लक्ष्य तो है न?

ओशो--बिलकुल नहीं। नहीं आनंद जी, बिलकुल नहीं क्योंकि मेरा मानना यही है कि लक्ष्य सिर्फ दुखी चित्त में होता है। सिर्फ दुखी आदमी के पास लक्ष्य होता है।

प्रश्न--संसार में चार आदमी अगर अच्छा सोचने लगें, तो यह लक्ष्य ही हो गया।

ओशो--नहीं, नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि अच्छा सोचने लग जाए, जैसे सोचना चाहिए, तो फिर तो मुझे बताना पड़े कि कैसे सोचना चाहिए। वह मैं नहीं कह रहा हूं। और जो लक्ष्य की बात उठायी, तो बहुत अच्छी बात उठायी।

खास तौर से हमारा खयाल है कि जो भी हम करते हैं, उसका कोई लक्ष्य होता है। मजा यह है कि लक्ष्य भविष्य में होता है, और करना वर्तमान में होता है। वर्तमान और भविष्य कभी नहीं मिलते। मिलते ही नहीं। लक्ष्य सदा भविष्य में होता है और करना सदा अभी होता है। इसलिए एक और तरह की भी जिंदगी है कि जहां करना ही लक्ष्य होता है। जैसे एक आदमी कहीं चला है--दिल्ली जा रहा है पैदल चलकर। उससे आप पूछते हैं, कहां जा रहे हो? वह कहता है कि दिल्ली जा रहा हूं। लक्ष्य हैं एक आदमी सुबह घूमने निकला है, उससे आप कहते हैं, कहां जा रहे हो? वह कहता है, जा कहीं भी हीं रहे हैं। घूम रहे हैं। लक्ष्य तो वहां भी है, वह उसी के साथ जुड़ा है, बस उसके बाहर नहीं है।

जैसे वानगाग से किसी ने पूछा कि तुम किसलिए पेंट करते हो? उसने कहा, किसलिए! तुमने कभी चांद से नहीं पूछा कि तुम किसलिए हो? तुमने कभी फूलों से नहीं पूछा कि किसलिए खिलते हो? जैसे फूल खिलते हैं, और जैसे चांद आकाश में है, वैसे ही पेंट करते हैं। किसलिए नहीं। पेंट करना ही आनंद है। मैं जब आपसे बोल रहा हूं, तो वह बोलना ही आनंद है। आपने सुन लिया, यह इतना बड़ा आनंद है कि इसके आगे और लक्ष्य बनाने की जरूरत नहीं है। और कुछ बनेगा तो बनेगा अपने से। उससे कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कुछ हमारा प्रयोजन नहीं। हमारी नजर में वह नहीं है। तो मैं बिलकुल लक्ष्यहीन आदमी हूं। मेरा मानना है कि जिसने भी जिंदगी में लक्ष्य खोजा, वह मुश्किल में पड़ा। जिसने जिंदगी को ही लक्ष्य मान लिया, उसने जान लिया, जान ही--रोज-रोज, पल-पल जी लेना ही।

जीसस के जीवन की घटना है। वह गुजर रहे हैं एक बगीचे से। उनके मित्र साथ हैं। बगीचे में लिली के फूल खिले हैं। जीसस ने उन फूलों को दिखाकर कहा, देखते हो लिली के फूल? सोलोमन--वह सबसे बड़ा सम्राट है उनका--जैसे हमारे यहां कुबेर की कल्पना है, वैसे यहां सोलोमन की है। सोलोमन अपनी पूरी शान में भी इतना शानदार नहीं था, जितना लिली के ये गरीब फूल हैं। तो किसी से उसने पूछा कि कारण क्या है? उसने कहा, कारण यह है कि सोलोमन कल पर जी रहा था, लिली का फूल अभी जी रहा है--इसी वक्त, कल है ही नहीं। उसे कल से कोई लेना-देना नहीं है।

लक्ष्य ही आदमी के चित्त में टेन्शन है। जिस आदमी की जिंदगी में लक्ष्य नहीं है, उसकी जिंदगी में कोई टेंशन नहीं है।

प्रश्न--पच्चीस साल पहले हमारे नेता गांधीजी या जवाहरलाल जी ने आजादी हासिल की, तो उनका लक्ष्य था कि आजादी लेनी है। यदि लक्ष्य न होता, तो आजादी नहीं मिलती।

ओशो--बहुत बड़ी आजादी मिलती। वह भी जाना नहीं? क्योंकि अंग्रेजों के जाने से आजादी नहीं मिल जाती है। जहां तक जिंदगी की सामान्य दौड़ का संबंध है, वहां लक्ष्य ही लक्ष्य

हैं, और उन लक्ष्यों में जीनेवाले लोग हैं; लेकिन मेरा कहना यह है कि लक्ष्य में जीनेवाला आदमी सदा दुख में जीता है। जब तक उसे लक्ष्य नहीं मिलता, तब तक वह दुख में जीता है। और जब लक्ष्य मिल जाता है, तब एक नया दुख शुरू होता है कि अब क्या? लक्ष्य में जीनेवाला माइंड सदा दुख में जीता है। पहले तो जब तक लक्ष्य नहीं मिलता है, तो इसलिए दुखी होता है कि लक्ष्य नहीं मिलता। जब लक्ष्य मिल जाता है, तब इसलिए दुखी होता है कि अब क्या? यानी तब वह नया लक्ष्य बनाए और फिर दुख में जीना शुरू करे।

दो तरह के लोग हैः एक वे हैं जो सदा लक्ष्य में जीते हैं--जो बिना लक्ष्य के एक मिनट जी नहीं सकते। अगर प्रेम कर रहे हैं तो भी लक्ष्य है, गीत गा रहे हैं तो भी लक्ष्य है। जो भी कर रहे हैं, उसका लक्ष्य है। ऐसे आदमी हमेशा टेंशन में जीते हैं। ऐसे आदमी को मैं अधार्मिक आदमी कहता हूं--अधार्मिक और उस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं जो जहां है वहीं जीता है।

एक झेन फकीर हुआ बोकोजू। एक आदमी उससे मिलने गया। उससे पूछा, तुम्हारी साधना क्या है? उस वक्त वह बगीचे में गड्ढा खोद रहा था। तो उसने कहा, गड्ढा खोदना। आगंतुक ने कहा, ऐसी साधना कभी सुनी नहीं--क्या हम भी गड्ढा खोदें, कि कहीं पहुंच जाएंगे? उसने कहा, कहीं पहुंचने के लिए गड्ढा खोदना साधना नहीं रह जाएगा। हम कहीं पहुंचने के लिए नहीं खोद रहे हैं सिर्फ गड्ढा खोद रहे हैं। और गड्ढा खोदने में बड़ा आनंद आता है। फिर भी उसने पूछा कि बताओ, मैं कैसे जीऊं? तो उसने कहा, मुझे जब नींद आती है तब सो जाता हूं और जब मेरी नींद टूटती है, तब उठ जाता हूं। जब भूख लगती है, खाना खा लेता हूं। जब भूख नहीं लगती है, तो नहीं खाता हूं। जब चुप होने का मन होता है तो चुप हो जाता हूं; जब बोलने का मन होता है, तो बोलने लगता हूं। मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया हूं। हवाएं पूरब ले जाती हैं तो पूरब चला जात हूं, पश्चिम ले जाती हैं तो पश्चिम चला जाता हूं। और जब हवाएं उसे जमीन पर गिरा देती है, तब विश्राम करने लगता हूं। और जब हवाएं छाती पर उठा लेती हैं और आकाश में चढ़ा देती हैं, तो आकाश में तैरने लगता हूं। मैं एक सूखा पत्ता हूं। मैंने जिंदगी को स्वीकार कर लिया है।

एक तो लक्ष्य से जीना। तो साधारण आदमी को वही सिखाया गया है कि लक्ष्य से जीओ--धन कमाओ, यश कमाओ, पद कमाओ यह बदलो, वह बदलो। ऐसे आदमी जी रहा है--चाहे आजादी लानेवाला है, चाहे गुलामी लानेवाला है। सब लक्ष्य से जी रहा है आदमी। सारी आदमियत लक्ष्य से जी रही है। कुछ थोड़े से लोग कभी ऐसे भी होते हैं, जो लक्ष्य से नहीं जीते, वे सिर्फ जीते हैं। अर्थात जीना ही लक्ष्य है। मेरा मानना है, ऐसे ही लोग जीवन की परम कृतार्थता को उपलब्ध होते हैं--ऐसे ही लोग, और अभी तो ये छूट के व्यक्ति हैं, छोटे मोटे! अगर किसी दिन कोई समाज भी ऐसे जीया, वह समाज भी परम कृतार्थता को उपलब्ध होगा। परम कृतार्थता को कोई भी उपलब्ध होता है, जब कल का कोई सवाल नहीं रहता। और जब जीवन की छोटी से छोटी चीज भी आनंद बन गयी है अपने में, यानी वह

जूते भी साफ कर रहा है, तो उतना ही आनंदपूर्ण है जितना प्रार्थना करना है। तो लक्ष्य कोई भी नहीं है।

तो मेरी समझ यह है कि अगर आनंद की दिशा में जाना हो, तो लक्ष्य के ऊपर उठना जरूरी है, उसके बियांड जाना जरूरी है। और अगर दुख की दिशा में जाना हो तो, लक्ष्य पकड़कर चलना पड़ता है। वह दुनिया उसे पकड़कर चलती है। राष्ट्र चलते हैं, समाज चलते हैं, लेकिन मैं मानता हूं कि ऐसा चलना गलत है। वैसी गुलामी भी गलत है, वैसी आजादी भी गलत है। और होता क्या है कि एक गलती को मिटाने के लिए दूसरी गलती लानी पड़ती है, लेकिन दूसरी गलती से वह ठीक नहीं हो जाती है।

मैंने सुना है--एक गांव में एक आदमी ने कांच साफ करने का धंधा शुरू किया। उसने एक पार्टनर रखा। वह पार्टनर पहले जाकर लोगों के कांच गंदे कर आता। तीन दिन बाद वह आदमी निकलता था और चिल्लाता था, कांच साफ करवा लो। लोग उससे कांच साफ करवाते हैं। कहते हैं, तुमने बड़ी कृपा की। तुम आ गए, बड़ी कृपा है, हम बड़े परेशान हैं, सब खिड़कियां गंदी हो गयी हैं हर गांव में यही होता है। वह आदमी चार छह दिन पहले कांच गंदे कर आता। वे दोनों एक ही धंधे के पार्टनर हैं। ये गुलामी लानेवाले और आजादी लानेवाले एक ही धंधे के पार्टनर हैं। बहुत गहरे में दोनों लक्ष्य वाले हैं। वह भी एक लक्ष्य लेकर आ रहे हैं, ये भी एक लक्ष्य लेकर आ रहे हैं! मेरा मतलब समझे न? वह गुलामी को मिटा रहे हैं, वह कोलतार पोत गया अभी कोई उसको मिटानेवाला आ गया है। वे हैं सब पार्टनर, एक ही बिजनेस है उनका। उनमें कोई बहुत फर्क नहीं है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें किसी धंधे से मतलब नहीं है। जिन्हें जीना ही काफी है। और मैं ऐसे लोगों का--अधिकतम लोग ऐसे हो जाए--तो मानता हूं कि कभी एक ऐसा समाज भी बन सकता है, जो बस जीता हो। तब स्वर्ग होगा। यानी मैं मानता हूं कि स्वर्ग नर्क में एक ही फर्क हो सकता है--अगर कहीं स्वर्ग और नर्क है तो स्वर्ग तो लोग सिर्फ जीते होंगे, और नर्क में लोग योजनाएं बनाते होंगे जीने की--कल की, आगे की, कभी की।

तो, मैं तो बिलकुल लक्ष्यहीन हूं। और मैं मानता हूं कि यह लक्ष्य की बात बुनियादी रूप से गलत हैं। और क्या करे आदमी कि किसी भी तरह से लक्ष्यहीन हो जाए--चाहे बांसुरी बजाए, चाहे पेंट करे, चाहे सड़क साफ करे। लेकिन ऐसा कुछ हो जाए कि वह मूवमेंट पूरी तरह से जिंदगी को घेर ले। और यह मूवमेंट परफेफ्ट एकशन बन जाए, पूर्ण कर्म हो जाए, इसी क्षण।

शरद बाबू की एक किताब है, जिसमें एक लड़की है कमल। वह एक कलाकार से शादी करके आ गयी है। जिस मकान में वह कलाकार उस लड़की को लेकर आया है, उस मकान का मालिक बूढा है, वह बहुत घबड़ा गया है। लड़की बड़ी सुंदर है और बड़ी निर्दोष मालूम पड़ती है। दोपहर को जब कलाकार बाहर गया है, तो बूढा उस लड़की से कहता है कि पागल, तुझे कुछ पता भी है, यह आदमी और भी दस-पांच औरतों को यहां ला चुका है? दो-चार महीने से ज्यादा नहीं चलती है एक स्त्री। तूने ठीक से शादी कर ली? कानून से? नहीं तो कल

मुश्किल में पड़ जाएगी। उस लड़की ने कहा, यह हुआ नहीं, यह तो बड?ा अच्छा हुआ। वह तो कहता था कि कानून से शादी कर लो। लेकिन मैंने ही कहा, शादी की क्या जरूरत है? प्रेम ही काही है। यह तो बड़ा अच्छा हुआ। अगर हम कानून से शादी कर लेते, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाते; क्योंकि तीन महीने बाद जब वह छोड़ता, तो छोड़ न सकता। जब छोड़ना चाहता, तो छूटना तो हो ही जाता, फिर कानून रह जाता। यह तो बड़ा अच्छा हुआ, भगवान की कृपा। उस बूढ़े ने कहा, पागल तुझे पता नहीं है। यह सारा प्रेम चुक जाएगा जल्दी। तो उसे लड़की ने उस बूढ़े से कहा कि मालूम होता है आपने कभी प्रेम पहचाना नहीं। क्योंकि जब प्रेम होता है, तो क्षण काफी होता है। उसके आगे के क्षण की फिकर किसको होती है? वह फिकर तो जिसको प्रेम नहीं होता, उसी को होती है। आगे के क्षण की फिकर--कि कल भी प्रेम होगा कि नहीं, यह फिकर पैदा ही तब होती है, जब प्रेम नहीं हो जाता है। उसने कहा, अभी तो प्रेम है। और अब तक है, है। और जब नहीं होगा, नहीं होगा। उपाय क्या है? अभी है। और तुमने अच्छा बता दिया। अगर पंद्रह दिन रहना है प्रेम, तो फिर पूरा तो जी लूं! फिर एक क्षण खोना ठीक नहीं है। क्योंकि पंद्रह साल रहता, तो आराम से भी जी सकते थे, और अगर पंद्रह दिन रहना है, तो और भी फुर्सत नहीं रह जाती। फिर कभी चूक भी सकते थे। बीच में छुट्टी भी रख सकते थे। पंद्रह ही दिन होगा न? तब तो एक-एक क्षण मूल्यवान हो गया।

तो, मैं मानता हूं कि चूंकि हम एकदम दुख में हैं, एकदम व्यर्थता में हैं, और कोई रस नहीं है, कोई आनंद नहीं है किसी का में, इसलिए हम रस और आनंद लक्ष्य में रखकर सुविधा बनाते हैं जीने की। वहां रख लेते हैं कि कल होगा, कल होगा। आज तकलीफ है, झेल लो; आज मुश्किल है, झेल लो। कल सब ठीक हो जाएगा, वह लक्ष्य मिल जाएगा, तो सब ठीक हो जाएगा। आज के जीने की जो कठिनाई है, उसे हम कल के लक्ष्य को बनाकर सरल बनाने की कोशिश करते हैं कि आज जीना मुश्किल हो जाए। अगर आप लक्ष्य मिटा दें। किसी का, और आज जीवन दुख है, तो फिर जीएगा कैसे? तो कल का लक्ष्य बनाकर, आज के दुख को झेलने का उपाय है लक्ष्य। लेकिन जब आज आनंद हो तो कल के लक्ष्य का सवाल क्या है? कल है ही नहीं!

यानी अगर बहुत ठीक से हम समझें, तो कल दुख पैदा होता है। गहरे में समझे, तो टाइम दुख से पैदा होता है। आनंद में टाइम नहीं होता। अगर आप एक क्षण को भी आनंद में हैं, तो फिर समय नहीं रह गया। समय है ही नहीं। और जब समय न हो, तो लक्ष्य कहां होगा? क्योंकि लक्ष्य हमेशा भविष्य में हो सकता है, और भविष्य हो सकता है समय में। और वर्तमान, समय का हिस्सा नहीं है। भविष्य समय है, अतीत समय है। वर्तमान, समय का हिस्सा है ही नहीं।

तो, मैं समय के तीन हिस्से नहीं करता--अतीत, वर्तमान, भविष्य; नहीं। वर्तमान तो समय का हिस्सा ही नहीं है। समय का हिस्सा तो भविष्य और अतीत है। अतीत है स्मृति, वह है समय, और भविष्य है आशा, कल्पना, लक्ष्य, वह है समय।

और वर्तमान का क्षण तो बिलकुल ही कालातीत है। हम अगर उसमें डुब जाए तो एकदम काल के बाहर हैं। चाहे जिस कारण से डूब जाए--प्रेम के क्षण में, संगीत के क्षण में, किसी भी क्षण में डूब जाए, किसी सृजन के क्षण में डूब जाए। एक चित्रकार चित्र बनाकर डूब जाता है। एक मूर्तिकार मूर्ति बनाकर डूब जाता है। एक संगीतज्ञ संगीत में डूब जाता है। और धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जो चौबीस घंटे डूबा ही रहता है। चित्रकार चित्र बनाकर फिर बाहर आ जाता है। मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, फिर वापस, उसी हमड्रम दुनिया में वापस लौट आता है। और धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूं, जो चौबीस घंटे उसमें ही डूबा रहता है। और ऐसा अगर डूबना हो, तो फिर जिंदगी प्रत्येक क्षण ही डुबानेवाली बने, और वह डूब सकता है। और ऐसे डुबाने की प्रक्रिया को मैं साधना कहता हूं। यानी लक्ष्य छिन जाए जीवन से, और क्षण गहरा हो जाए! और जिंदगी फैलाव में न हो।

दो तरह की जिंदगी है। एक फैलाव की जिंदगी हैं, होरिजेंटल है। एक लकीर पर बिंदु रखे हुए हैं, वह चले गए हैं आगे तक। और एक जिंदगी वर्टिकल है। ऊपर जाती है, नीचे जाती है। तो अगर वर्टिकल जिंदगी में जाना हो, तो यह क्षण काफी है, इसमें गहरे से गहरा डूबा जा सकता है, ऊंचे से ऊंचा जाया जा सकता है। जाने का वह मार्ग ही अलग है। वहां प्रत्येक क्षण अपने में पर्याप्त है, अगल क्षण का सवाल नहीं है। और अगर ऐसे न जाना हो, तो फिर होरिजेंटल गति है। एक क्षण से दूसरा क्षण, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, और पहले क्षण को इसमें गुजारो, तो दूसरा क्षण आएगा। तो जीएंगे। दूसरा इसमें गुजारो, तो तीसरा आएगा, तो जीएंगे। और ऐसे पूरी जिंदगी गुजारो और आखिर में मौत हाथ में आ जाती है, और कोई लक्ष्य नहीं आता हाथ में, आ सकता नहीं। क्योंकि लक्ष्य आ सकता था, उसी वर्तमान में पकड़ लेने से, उतर जाने से।

एक जर्मन मिस्टिक हुआ हकहार्ट। वह एक कहानी कहता था। एक आदमी ने ज्ञान इकट्ठा करने के लिए दुनिया की सारी किताबें इकट्ठी कीं। उसने सोचा कि किताबें इकट्ठी कर लूं ताकि ज्ञान मिल सके। तो ज्ञान लक्ष्य बनाया, किताबें संग्रह कीं। संग्रह करते-करते वह साठ साल का हो गया, लेकिन किताबें अभी भी बहुत बाकी रह गयीं। और उसने कहा जिंदगी तो चुक जाती है, ज्ञान कब होगा? किसी ने उससे कहा कि पागल किताबें ही जुटाता रहेगा? उसने कहा, ज्ञान तो तभी होगा जब सब किताबें जुट जाएंगी। तो किताबें तो बहुत ज्यादा हैं, तो तेरी जिंदगी तो बहुत छोटी है। तेरी जिंदगी चुक जाएगी, किताबें नहीं जुटेंगी। तुझे जो ज्ञान प्राप्त करना हो, अभी कर ले। लेकिन उसने कहा, अब मैं क्या कर सकता हूं। इतनी किताबें हो गयीं--साठ साल का बूढा आदमी, इतनी किताबें इकट्ठी करने लगा रहा, तो खयाल नहीं किया कि कितनी हो गयी। आज जाकर देखा, तो घबड़ा गया कि किताबें इतनी थीं कि साठ जन्मों में पड़ी नहीं जा सकती थीं।

तो, वह बीमार पड़ गया। उसने गांव के बड़े पंडितों को बुलाकर कहा, बड़ी कृपा होगी, मैं तो मर गया, साठ साल गंवा दिए। और अब मौत करीब आती है, और किताबें इतनी ज्यादा हैं, इन्हें संक्षिप्त कर दो, तो बड़ा हो। तुम सब पंडित लग जाओ, जो खर्च होगा दे

दूंगा। लेकिन किताबें संक्षिप्त कर दो। पंडितों ने पांच साल लगाए किताबें संक्षिप्त कर लें, तो ज्ञान मिल जाए। और वक्त संक्षिप्त करने में जा रहा है। फिर भी वे किताबें लेकर आए, तो पांच ऊंटों पर लद जाए, इतनी किताबें थीं। क्योंकि लाइब्रेरी तो इतनी बड़ी थी कि पांच सौ ऊंटों पर लद जाए। तो उसने कहा, पागलो, यह मुश्किल है, मैं कब पढ़ पाऊंगा? पांच ऊंटों पर नहीं हुई किताबें भी बहुत ज्यादा हैं। यह तो नहीं हो सकता है। तो और संक्षिप्त करो। पंडितों ने कहा, पांच वर्ष और लग जाएंगे।

पांच वर्ष और लगे। किताबें संक्षिप्त करके लाए। जब वे लोग किताबें लेकर आए तो वह बीमार, मरणासन्न पड़ा था। चिकित्सक घेरे खड़े थे। पांच किताब में संक्षिप्त कर लाए थे। उस आदमी ने सिर पीट लिया। उसने कहा, ये पांच किताबें मैं कब पढ़ूंगा? और संक्षिप्त करो। क्योंकि मुझे ज्ञान पाना है। उन्होंने और संक्षिप्त कीं। अब की बार जब दे आए, तब वह बेहोश हो गया। और चिकित्सकों ने कहा, घड़ी दो घड़ी का मेहमान हैं। पांच पन्नों में संक्षिप्त करके लाए थे। वे पांच पन्ने भी बहुत ज्यादा थे। चिकित्सकों ने कहा, पांच पन्ने कब पड़ेगा? क्योंकि मरा, अभी मरा। और संक्षिप्त करो। उन्होंने और संक्षिप्त किया, तो वे पांच शब्द लेकर आए, लेकिन अब वह आदमी मरने के कगार पर था। पांच शब्द नहीं कह पाए, उसके कान में, एक शब्द कह पाए। वह बेहोश था, लेकिन तब उसने सुना भी नहीं होगा। कोई कहता है, उन्होंने कहा, परमात्मा, कोई कहता है, मोक्ष, निर्वाण। कुछ भी कहा हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। और वह आदमी था, जो जिंदगी इसकी व्यवस्था में गंवाते हैं कि जाएंगे कभी।

प्रश्न--लेकिन लक्ष्य हीनता भविष्य में है?

जी नहीं लक्ष्य हीनता ही जीवन है।

प्रश्न--क्या लक्ष्य हीनता स्वयं में एक लक्ष्य नहीं है?

हां ऐसा कह सकते हैं; लेकिन नहीं कह सकते इसलिए कि लक्ष्य होता है सदा भविष्य में। और जीना होता है सदा अभी, वर्तमान में। अभी और भविष्य का कोई मेल--जोल नहीं होता। कह सकते हैं कि जीवन ही लक्ष्य है। लेकिन लक्ष्य की यह भाषा खतरनाक है; क्योंकि लक्ष्य होगा कहीं, समव्हेअर और जीवन है यहां। इन दोनों के बीच कोई मेल नहीं है। कहें तो कह सकते हैं, हर्ज नहीं है; लेकिन खतरनाक है कहना। क्योंकि वह पुराना भाव फिर खयाल में आ जाता है। और दूसरी बात जो आप कहते हैं कि लक्ष्य हीनता मृत्यु नहीं है? नहीं, बस लक्ष्य की खोज ही मृत्यु है। लक्ष्य की खोज में जीवन खो जाता है।

प्रश्न--फिर विकास क्यों नहीं कर रहे हैं?

ना, यह हमें लगता है। क्योंकि हमारी धारणा यह है कि जब तक लक्ष्य का तनाव हमें खींचने का हो, तब तक विकास होगा ही नहीं एक छोटी कहानी कहूं आपको। कल्याण जी, खयाल में लीजिए।

एक रात तानसेन विदा हुआ है अकबर के दरबार से। सीढ़ियों पर अकबर उसे छोड़ता है, और सीढ़ियों पर हाथ पकड़कर रोक लेता है। अकबर की आंख में आंसू हैं। उससे कहता है

अकबर कि तू कैसा अदभुत आदमी है! पृथ्वी पर तेरे जैसा कभी कोई हुआ है संगीतज्ञ? है कोई? कई बार मेरे मन में सवाल उठता है कि तुझसे भी बेहतर किसी ने गाया बजाया होगा? और कल से मैं बड़ा चिंतित हूं, क्योंकि रात मुझे एक और खयाल आया। हो सकता है, तूने भी किसी से सीखा हो। कोई तेरा गुरु हो। तेरा कोई गुरु है? तानसेन ने कहा, मेरे गुरु हैं, जिनसे मैंने सीखा। वह हैं अभी। तो अकबर ने कहा, कभी उन्हें बुलाओ दरबार में और हम उन्हें सुनें। तानसेन ने कहा, यह जरा मुश्किल है। क्योंकि वे तब नहीं गाते, जब कोई गाने के लिए कहे। किसी को सुनना हो, तो तब सुनना पड़ता है, जब वे गाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जब किसी ने कहा कि गाओ, तब कैसे गाया जा सकता है? जैसे किसी ने कभी कहा कि करो प्रेम, तब कहीं प्रेम किया जा सकता है? तब अभिनय हो सकता है, प्रेम नहीं हो सकता। तो वे गाते नहीं हैं कहने पर, कभी गाते हैं।

अकबर ने कहा, फिर कैसे होगा? उसने कहा, मैं पता लगाता हूं कि के कब बातें हैं। जब गाते हैं, तब हम चले चोरी से सुनना पड़ेगा। यह हो सकता है, हम सामने जाए, वह गाना बंद कर दें। छिपकर ही सुनना पड़ेगा। और उनसे छिप-छिपकर ही मैंने सीखा है। सच तो यह है कि सीखना सब छिप-छिपकर ही होता है। वह इतना डेलिकेट मामला है कि आमने-सामने थोड़े ही होता है। छिप-छिपकर ही होता है, किनारे-किनारे से बचकर होता है। और जो लोग आमने-सामने ही देखने के आदी होते हैं, वह कभी हनीं सीख पाते। वह बिहाइंड द लाइनस होता है। जो लाइन से पढ़ने के आदी होते हैं, वे चूक जाते हैं। उसने कहा, छिपकर!

तानसेन ने कहा, कि पता लग गया है। वे तीन-चार बजे रात उठते हैं। गंगा के तट पर रहते हैं। वहीं झोपड़ी के पीछे हम छिप जाएंगे रात दो बजे। जब वे गाएंगे, तब सुन लेंगे। शायद ही अकबर की हैसियत के किसी सम्राट ने चोरी से किसी फकीर का गीत सुना हो। अकबर छिप गया है रात दो बजे। तानसेन है और एक-दो मित्र हैं। और तीन बजे के लगभग हरिदास ने गाना शुरू किया है, और अपने सितार पर गा रहे हैं, और झोपड़े में नाच रहे हैं। फिर गीत बंद हो गया। वे स्नान करने चले गए।

फिर ये रथ में वापस लौट। महल तक अकबर कुछ बोला नहीं सीढ़ियों पर उसने तानसेन से कहा कि मैं तो सोचता था कि तुझसे श्रेष्ठ कौन हो सकेगा! अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, तू तो कुछ भी नहीं है। लेकिन इतना फर्क क्यों? तो तानसेन ने कहा कि फर्क इसलिए है कि मैं गाता हूं, बजाता हूं, कोई लक्ष्य है, कुछ पाने का खयाल है। गाते हैं और बजाते हैं, खत्म हो गयी बात। गाने का खयाल नहीं रहता। वे मालिक हैं, मैं गुलाम हूं। वह लक्ष्य मेरी गुलामी बना हुआ है। वह जो मुझे मिलना चाहिए, उसमें मेरा प्राण लगा है; यहां तो मरो प्राण ही नहीं है। मैं बजा रहा हूं, तो मेरे मुर्दा हाथ बजा रहे हैं। मेरे प्राण तो, वह जो मिलेगा उसमें हैं; वह जो आंखों में दिखेगा--आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा तो उसमें है। तो मैं बिलकुल मुर्दा बजाता हूं। उनका बजाना बड़ा जीवंत है। क्योंकि उन्हें कुछ पाना नहीं है। न किसी की आंख का सवाल है, न किसी के सम्मान का। अकबर ने कहा, फिर वह बजाते ही क्यों हैं? यह हम कैसे सोच सकते हैं कि ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है, जो बिना

कारण बजाता है? तानसेन ने कहा कि मैंने उनसे कभी पूछा था, तो उन्होंने कहा था कि दो तरह का बजाना है--एक तो वह बजाना है जिसमें आनंद मिलने की कल्पना है। और एक बजाना है जो आनंद के मिलने से निकलता है; क्योंकि आनंद भी तो बटेगा न? तो फिर बजेगा, कुछ होगा।

तो, एक तो वह विकास है फीवरिश बुखार से भरा हुआ, जो लक्ष्य के टेंशन से पैदा होता है। वह वैसा ही है, जैसे कोई किसी बैल के गले में रस्सी बांधकर खींचता है। तो बैल खिंच रहा है, और बैल यह भी कह सकता है कि जब तक कोई रस्सी में नहीं खींचता, तो फिर बैल चलेगा कैसे? यह बात ठीक है। बैलगाड़ी में नहीं चलेगा। लेकिन जंगल में बैल का अपना भी एक चलना है जिसमें बैलगाड़ी का कोई लेना-देना नहीं है।

तो, एक फीवरिश डेवलपमेंट हैं हमारा, जिसमें एक बुखार है, और आगे का लक्ष्य रस्सी की तरह बंधा हुआ है। यह विकास नहीं है। यह सिर्फ बुखार है। विकास तो वह है, जो अत्यंत सहज है, जिसमें आगे कोई खींच नहीं रहा है, पीछे कोई धक्के नहीं दे रहा है। बल्कि फूल खिल रहा है, क्योंकि कली फूल बनेगी ही। करोगे क्या? उस तरह जो विकास होता है, वह भी एक विकास है। वह इसलिए नहीं होता कि आगे कुछ मिलना है, बल्कि जो हमें मिलता जाता है, वह हमारे भीतर नए-नए फूल खिलता चला जाता है। जो-जो होता चला जाता है, वह नए-नए फूल खिलाता जाता है। फूल खिलते हैं, लेकिन फूलों को खिलने की कोई कामना नहीं है, कोई एम्बीशन नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। फूल खिलते हैं। विकास तो होता ही है। बल्कि मैं मानता हूं, यही बकवास है। क्योंकि इसमें बुखार नहीं है--अत्यंत स्वस्थ, शांत, शालीन और सहज है। आदमी भर को यह खयाल है कि विकास तनाव से होगा और यह गलत शिक्षा का खयाल है।

प्रश्न--आप ऐसा नहीं समझते कि अच्छे, प्रतिभा के लोग, सब लोग इस विचार को फालो करें?

ओशो--नहीं, नहीं, यह तो मैं कह नहीं रहा। फालो करें, ऐसा नहीं। मैं कहता हूं मिलेगी, हजार-लाख गुना होकर मिलेगी। और बीमार नहीं होगी, स्वस्थ होगी, सरल होगी। एक तो ऐसा भी कि कलियों को जबर्दस्ती खोलकर भी फूल बनाया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। आप पकड़कर खोल दें, तो भी कली खिल जाएगी और फूल दिखेगा। लेकिन एक वह भी कली है, जो खिलती है और फूल आता है। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। एक फूल के खिलने में सहजता है और एक फूल की कलियों को जबर्दस्ती खिला दिया जाता है। हो सकता है धोखा हो जाए। मैं तो यह कह रहा हूं कि फीवरिस आदमी दुनिया को कुछ दे ही नहीं पाता। वह अपने फीवर को संक्रमित कर जाता है।

प्रश्न--उसके बाद एक दीगर सेक्रीफाइज न होकर, आप अपनी पर्सनल हैपीनेस लूज करे, और कुछ दें दुनिया को...!

ओशो--हां, मैं समझा आपकी बात। असल में सेक्रीफाइज बहुत गंदा शब्द है। त्याग शब्द ही बहुत बेहूदा है। और जब आप कहते हैं त्याग, तभी आप दूसरे को डोमिनेट करना शुरू कर

देते हैं। आप कहते हैं सेक्रीफाइज, तभी आप हावी होना शुरू हो जाते हैं। नहीं, वैसी खिली हुई सहज प्रतिभा भी बहुत कुछ देती है। लेकिन देने में कोई सेक्रीफाइज बनाना ही गलत है; और अगर सेक्रीफाइज करके देना पड़े, और दुख से देना पड़े तो मैं मानता हूं कि वह कभी आनंद पैदा नहीं कर सकता। बहुत गहरे में दुख की ही प्रतिध्वनियों को बढ़ाता चला जाएगा। लेकिन जो आनंद से दिया जाता है, और आनंद से ही दान हो सकता है, लेकिन तब दान बिलकुल मूक है। और तब दान देनेवाले को पता भी नहीं है कि किया। यही होगा कि दान देनेवाला दानदाता तो बनेगा नहीं। सेक्रीफाइज का तो सवाल ही नहीं है। अनुगृहीत होगा उसका जिसने ले लिया, क्योंकि उसके आनंद को बंटने का मौका नहीं था, न किसी ने बांट लिया।

जब आप फूल के किनारे से निकलते हैं, तो उसकी सुगंध आपको मिल गयी। अगर फूल कह सके, तो अनुगृहीत होगा, धन्यवाद देगा। नहीं तो ऐसा भी हो सकता था, रास्ते से कोई न निकलता, सुगंध गिरती रहती। कोई पहचाना, तो धन्यवाद दे सकता है। जो महानतम दान है, वह त्याग से नहीं होता। वह आनंद से ही होता है। लेकिन हम सब इतने दुखी लोग हैं कि आनंद की भाषा नहीं समझ पाते। त्याग की ही भाषा समझ पाते हैं। मां अपने बेटे से कहती है कि तू अपना त्याग कर मेरे लिए। उसने त्याग किया अपने पति के लिए४ उसका पति त्याग कर रहा है बेटों के लिए। बेटे त्याग कर रहे हैं बहनों के लिए। सारी दुनिया एक-दूसरे के लिए त्याग कर रही है और एक चक्कर पैदा हो गया है। उसमें सब दुखी हैं। मेरा मानना यह है कि एक-एक व्यक्ति का सबसे बड़ा काम यह है कि वह आनंदित हो जाए। और उसके आनंद से बहुत कुछ बंटेगा चारों तरफ। फैल जाएगा चारों तरफ, लेकिन न तो त्याग होगा, और न त्याग का खतरा होगा। क्योंकि जिस आदमी ने भी त्याग किया, वह आपको टार्चर करेगा। त्याग बड़ा टार्चर है। अगर मां ने कहीं यह कहा कि बच्चे, मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा, बड़ा त्याग किया। ले लेगी जान बच्चे की, उस बच्चे को मार डालेगी, जिंदा नहीं रहने देगी। अगर उसने यह कहा कि मैंने तुझे दूध पिलाया, और तुझे बड़ा किया, और तू रोया, और तेरी इतनी सेवा की, मैंने इतना त्याग किया, तो पहली बात यह है कि वह मां ही हनीं है।

प्रश्न--तो वह त्याग कैसा?

ओशो--हां, मैं यही कह रहा हूं कि जो कहा जाए वही नहीं, जो अनुभव भी किया जाए वह भी मैं ही हूं। असल में त्याग का अनुभव ही गलत बात है। अगर मेरे आनंद से हुआ है, तो बात क्या है? त्याग कहां है? अगर मैंने दो घंटे जाकर किसी फूल पर पानी डाला, और वह मेरा आनंद था, तो यह त्याग नहीं है। और जिसे मैं प्रेम करता हूं, उसके पास रात भर बैठा रहा, वह बीमार है, तो यह त्याग नहीं है। त्याग नहीं, यह मेरा आनंद है। और वह जो आप कहते हैं, यह तो एक्स्ट्रीम सेल्फिशनेस है, वे ठीक कहते हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति सच्चे अर्थों में स्वार्थी हो जाए तो दुनिया से सब बीमारियां खत्म हो जाए। लेकिन मजा यह है कि कोई स्वार्थी तक नहीं है, तो परमार्थी होना बहुत मुश्किल है। और परम स्वार्थ में सब

परार्थ हल हो जाता है; क्योंकि जब मैं परम स्वार्थ में उतरता हूं तब मैं करूंगा क्या--मैं अपना आनंद ही खोजूंगा न! और ध्यान रहे, जिस दिन भी मैं अपने आनंद को जीने लगता हूं, उस दिन मैं आनंद ही बटूंगा, करूंगा क्या? दुखी आदमी दुख बांटता है, चाहे कुछ भी; क्योंकि जो हमारे पास है, वही हम बांट सकते हैं, अन्य कुछ बांट ही नहीं सकते।

तो इधर मैं ऐसा सोचता हूं, लक्ष्य से मुक्त, त्याग से मुक्त, स्वार्थ परार्थ की भाषा से मुक्त, सिर्फ जीने के आनंद में प्रफुल्लित, ऐसा व्यक्ति अगर खिले, तो उसकी संबंध बहुत बंटेगी। उसकी सुगंध होगी, तो वह सुगंध वैसी नहीं होगी, जिसे आप कह रहे हैं। उसे बहुत दान मिलेगा। लेकिन, जो दुनिया हमने बनायी है, वह दुख पर खड़ी है। और दुखी चित आधार है। दुखी चित्त सिर्फ दुख की भाषा में सोच सकता है। इसे हम कई बार पहचान भी नहीं पाते हैं। अब जैसे कि महावीर है, वह नग्न खड़े हो गए, तो जैन ग्रंथों में लिखा है और जैन गुरु समझते हैं कि उन्होंने बड़ा त्याग किया--कपड़े छोड़ दिए। धन छोड़ दिया, घर छोड़ दिया। मैं मानता हूं, इससे बड़ी नासमझी की बात नहीं हो सकती। महावीर के लिए नग्नता इतनी आनंदपूर्ण रही होगी कि अगर वे कपड़े पहनते तो वही त्याग हो जाता है। महावीर के लिए नग्न होना ऐसा आनंदपूर्ण रहा कि छूट गए कपड़े। लोग कह रहे हैं कि त्याग किया। यह बात वे लोग कर रहे हैं, जो नंगे खड़े होने में कोई आनंद नहीं देख पा रहे हैं। वह ठीक कह रहे हैं; क्योंकि उनके लिए नंगा खड़ा होना बड़ा दुख हो जाएगा। और यह आदमी नंगा खड़ा हो गया और हमें लग रहा है कि त्याग किया। और महावीर ने अगर महल छोड़ दिया, तो हमें लग रहा है कि भारी त्याग किया। क्योंकि महल! हम तो उस महल की कामना ही किए बैठे हैं कि मिल जाए, और महावीर के लिए हो सकता है कि पहल की दीवालें कारागृह बन गयी हों और वह सिर्फ कारागृह से निकल रहे हो।

और महावीर से जब किसी ने कहा कि आपने इतना छोड़ा तो उन्होंने कहा, छोड़? कोई आदमी अपने घर का कचरा बाहर फेंक देता है कूड़े में, तब हम नहीं कहते कि उसने कुछ छोड़ा। जो मुझे कचरा दिखने लगा वह छूट गया। जो आनंदपूर्ण था, वह रह गया। अपना अपना आनंद। और अगर आनंद नहीं है, तो खतरनाक है वह आदमी। खतरनाक आदमी है अगर त्याग किया है तो, अगर वह आनंद नहीं है उसका।

प्रश्न--उनके सामने लक्ष्य था कि गांव के इतने लोग नंगे रहते हैं।

ओशा--हां, अगर वैसा है, तो महावीर खतरनाक आदमी है। वह गर्दन पकड़ लेंगे फिर, वह बहुत सताएंगे। गुरु लोग इसी तरह सत्ता रहे हैं। वे कह रहे हैं, हमने इतना त्याग किया। वह गर्दन पकड़ लेते हैं कि हम जले गए थे, अब हमें गद्दी पर बिठाओ।

प्रश्न--वह क्या अनुभूति है जिसकी वजह से सब परिवर्तन हो जाता है, बदल जाता है? वह कैसे आएगी? आपका प्रयास कहीं अनकांशस से कांशस से...?

ओशो--नहीं, वही मैंने कहा। अब इसे आखिरी बात मान लेना। मैंने कहा न कि मेरा प्रयास तो एक ही था कि जो मैं नहीं जानता हूं, वह न मानूं। किसी को पकडूं न। किसी बात को सत्य न मान लूं। किसी विचार को स्वीकार न करूं, जिसे न जान लूं। मानूंगा नहीं, इतना

ही प्रयास था। और जब मानूंगा नहीं, तो हाथ से सब चीजें छूट गयी, हाथ खाली हो गया। क्योंकि सब हाथ मान्यता से भरे हैं। पूरी खोपड़ी हमारी मान्यता से भरी है।

एक लड़की मुझसे प्रेम करती थी, युनिवर्सिटी में था। उसने कहा, मैं आपसे विवाह करना चाहूंगी। मैंने कहा, तू कर सकती है। क्योंकि मेरा कोई भरोसा नहीं; क्योंकि मैं किसी को पत्नी नहीं मान सकता। मेरा भरोसा नहीं, मैं तुझे पत्नी नहीं मान सकता; क्योंकि इतनी कठोरता मैं कर ही नहीं सकता कि तुझे पत्नी मानूं। मैं तुझे गुलाम नहीं बना सकता। मैं कोई भरोसे का आदमी नहीं हूं। आज तुझसे कहता हूं कि प्रेम है, और कल अगर प्रेम न रहा, तो कह दूंगा कि नहीं है। जिस दिन नहीं होगा, उस दिन नहीं कहूंगा कि है, फिर ढोंग नहीं रचा सकूंगा। आज तू कहती है, तो मैं कहता हूं कि ठीक है। साथ रहना सुखद हो सकता है। तुझे रहना हो रह, लेकिन कल विदा हुआ जा सकता है। फिर वह दुबारा लौटी नहीं कभी। क्योंकि हम तो सारा मामला है पक्का भरोसा करके, आगे का इंतजाम करके, सिक्योरिटी करके--हमारे सब विश्वास ही सिक्योरिटी से हैं--भगवान को मानो, मोक्ष को मानो, नर्क को मानो, स्वर्ग को मानो, कर्म को मानो। सब सिक्योरिटी हैं--पाप को मानो, पुण्य को मानो। तो कोई सुरक्षा मैंने नहीं मानी। और वह जो विस्फोट आया, वह असुरक्षित होने से आया। वह जो टोटल इनसिक्योरिटी पैदा हुई, उससे आया।

प्रश्न--वह क्या था?

ओशो--यह कहना बहुत मुश्किल है कि वह क्या था? ऐसे ही जैसे कि झील के एक झरने पर पत्थर रखा हो, पत्थर को हम तोड़ डालें, तो पत्थर बिखर कर टूट जाएगा, अलग हो जाएगा और झरना फूट पड़े पीछे से, जो कि था ही, जो कि है ही सब में। हमने जो मान्यताएं पकड़ रखी हैं, वह पत्थरों की तरह हैं--चारों तरफ से उस झरने को रोके हुए। और अगर हम तैयार हो जाए, मान्यता के त्याग को, बिलीफ को, तो पत्थर हट जाते हैं, और झरना फूट पड़ता है। और वह झरना कैसा? यह इतना ही मुश्किल है मामला, जैसे किसी आदमी की आंखें न हों, और उसने प्रकाश न देखा हो। वह पूछे कि प्रकाश क्या है? और कोई आदमी उससे कहे कि घर में दिया जल रहा है और दिए में सब दिखाई पड़ता है।वह आदमी कहे, यह तो सब ठीक है, लेकिन दिया जला का मतलब क्या है? प्रकाश, इसका मतलब क्या है?

एक कहानी निरंतर कहता हूं--रामकृष्ण कहते थे। एक आदमी गया है अपने मित्र के घर। अंधा है। उसने खीर बनायी है। अंधे ने पूछा है कि यह खीर कैसी है, यह क्या है, किस चीज से बनी है? तो मित्रों ने कहा, यह दूध से बनी है। पूछा कि पहेली मत बुझाओ; क्योंकि मुझे खीर का ही पता नहीं है, दूध का पता नहीं है। तुम कहते हो दूध से बनी है, और एक नया प्रश्न खड़ा हो गया है कि दूध क्या है? फिर उन्होंने कहा, दूध बिलकुल सफेद होता है, शुभ्र। तो कहा, शुभ्रता? मुश्किल में डाल दिया, मैं तो मर गया। वह खीर तो वही रही, दूध भी वहीं रहा! यह शुभ्रता क्या है? कुछ ऐसा समझाओ कि मैं जरा समझ जाऊं। तो एक मित्र ने कहा कि बगुला देखा है कभी? वह अंधा आदमी, उससे कहा बगुला देखा है

कभी? बगुले की तरह सफेद पंख, बस वैसा ही सफेद दूध होता है। उस अंधे आदमी की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा, तूने तो मुश्किल कर दी। बगुला तो देखा ही नहीं कभी। कुछ ऐसा बताओ मुझ अंधे का मजाक न करो। कुछ ऐसा बताओ, कि मैं समझ जाऊं। तो एक मित्र पास आया, उसने हाथ उठाया। उसने कहा, मेरे हाथ पर हाथ फेर। अब तेरी समझ में आता है कुछ? हाथ पर हाथ फेरा उसने। उसने कहा, लेकिन इसका मतलब क्या है? स्पर्श हुआ तुम्हारे हाथ का, सुडौल है बहुत। उसने कहा, बगुले की गर्दन ऐसी होती है--सुडौल, हाथ की तरह। अंधा खड़ा होकर नाचने लगा। उसने कहा, जान गया कि दूध कैसा होता है, सुडौल हाथ की तरह न? बिलकुल पहचान गया कि दूध कैसा होता है। सुडौल हाथ की तरह होता है। वे सब मित्र कहने लगे, क्षमा कर, क्षमा कर! यह बात मत कर। यह तो और मुश्किल हो गयी इससे तो वही ठीक था कि तू जानता था कि नहीं जानता है। यह तो और झंझट हो गयी। हम कुछ न समझा पाए।

असल बात यह है कि विस्फोट तो है अनुभव। और ऐसा अनुभव है कि जिसके लिए कोई पैरलज जीवन में नहीं है। बिलकुल क्षण में, एक क्षण में, धीरे-धीरे कभी भी नहीं, इसीलिए विस्फोट कह रहा हूं। एक्स्टपलोजन कहने का कारण ही कुल इतना है कि कोई ग्रोथ नहीं है कि ऐसा धीरे-धीरे वे चीज हो सकती हैं, जो खंड-खंड की जा सकें। जैसे प्रेम धीरे-धीरे नहीं हो सकता। जो धीरे-धीरे नहीं हो सकता। जो धीरे-धीरे हो, वह प्रेम नहीं, सिर्फ लाइकिंग होगी। लाइकिंग अक्सर लव समझ ली जाती है। लव तो विस्फोट ही होता है! धीरे-धीरे जो होता है, वह सिर्फ पसंद है। धीरे-धीरे हम एक आदमी के साथ रहते हैं, तो उसे पसंद करने लगते हैं। और जिन मुल्कों ने विवाह ईजाद किया, उन्होंने इसी तरकीब पर ईजाद किया कि दो को साथ कर दो, धीरे-धीरे पसंद करने लगेंगे। और दूसरों के साथ का उपाय मत दो, ताकि उनको पसंद करना ही पड़े। इसलिए दूसरे की पतियों से, दूसरे की लड़कियों के मिलने का उपाय बंद कर दो ताकि साथ रहना पड़े। साथ रहने से संग हो, उस संग से पसंदगी हो। पसंदगी से प्रेम मालूम होने लगे। वह विवाह के बाद प्रेम मालूम होते नहीं, क्योंकि विवाह के बाद एक ग्रोथ है, जो पसंदगी की है। प्रेम तो एक विस्फोट है, जो एक क्षण में घट जाता है।

वैसे उदाहरण के लिए कह रहा हूं--ऐसे ही ज्ञान भी एक विस्फोट है, जो एक क्षण में घट जाता है। ऐसा नहीं होता कि थोड़ा-थोड़ा अज्ञान कम होता चला जाता है--एक दिन आप पाते हैं कि अज्ञान कम होते-होते ज्ञान आ गया। ऐसा नहीं होता कि पहले मैं माचिस जलाता हूं तो ऐसा नहीं होता कि पहले थोड़ा अंधेरा बाहर जाता है। फिर और थोड़ा अंधेरा बाहर जाता है, और थोड़ा बाहर जाता है। ऐसा नहीं होता है। माचिस जली कि अंधेरा नहीं है। इसमें इतना ही विस्फोट है। लेकिन विस्फोट क्या है, वह विस्फोट करके ही जानना पड़ेगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।

तो उसके लिए मैं कहता हूं कि कभी दस-पांच मित्रों को लेकर दस-पंद्रह दिन कहीं भी एकांत में चलकर रहें। विस्फोट की प्रतीक्षा करें।

प्रश्न--क्या मेरा भी हो सकता है?

ओशो--हो सकता है। बिलकुल हो सकता है। यानी मेरी तो सारी कोशिश ही यह है कि खयाल में आ जाए कि ऐसी कोई चीज हो सकती है, तो वह करनी ही पड़े, बल्कि तैयारी है हमारे भीतर सबके। और नहीं पा रही है, इससे हम बहुत ज्यादा कष्ट झेल रहे हैं। क्योंकि कोई झरना भीतर से फूटना चाहता है, और सब तरफ से पत्थर दबा दिए गए हैं। वह झरना हमारी जिंदगी है। जितनी सभ्यता बढ़ती जाती है, उतने पत्थर चढ़ते चले जाते हैं। वे उस झरने पर दब जाते हैं। इसलिए सभ्यता पागल करती है। आदमी को। सभ्यता आत्महत्या लाती है। क्योंकि वह झरना कहता है कि मुझे निकलने दो। और हम सब दबाते चले जाते हैं। पत्थर क्या है, यह समझाया जा सकता है। वह हमारी पहचान है और पत्थर हट जाए तो, विस्फोट होगा। लेकिन वह होगा, तो ही खयाल में आएगा, उसके बिना नहीं आ सकेगा।

बंबई,

१४-९-६९

मेरा विकल्प

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--चित्रकला में चित्रकार, चित्र बनाने वाला अलग होता है, और जैसे-जैसे चित्र बनता जाता है, वैसे-वैसे चित्र अलग होता जाता है। जब तब नहीं बना, तब तक बनानेवाला चित्र एक है। जब तक चित्र नहीं बना, तब तक चित्रकार ही है, और वही चित्र भी है। फिर उसने बनाया, तो चित्र अलग हो गया और चित्रकार अलग हो गया।

तो एक ऐसा सृजन है कि जहां सृष्टा से अलग हो जाता है। लेकिन दूसरा उदाहरण लें--नृत्यकार है, वह नाचता है। लेकिन नृत्य अलग नहीं होता है। लेकिन नृत्य और नृत्यकार एक ही रह जाते हैं। जब नहीं नाच रहा था, तब भी एक थे। अब जब नाच रहा है, तब भी एक हैं और नाच बंद हो जाएगा, तो नृत्यकार ही मिलेगा, नृत्य कहीं खोजने से मिलनेवाले नहीं है। यानी वहां क्रिएटर और क्रिएशन एक ही है। ये दो उदाहरण इसलिए लेता हूं कि जब तक आमतौर से परमात्मा को इस तरह सोचा गया है कि जैसे वह बनाकर अलग हो जाता है। वह गलत दृष्टि है। परमात्मा क्रिएटर नहीं है, सृष्टा नहीं है; क्योंकि सृष्टा हमेशा सृष्टि से अलग हो जाता है।

परमात्मा है क्रिएटिविटी, परमात्मा है सृजन की शक्ति।

जैसे, नृत्य और नृत्यकार, कि वह अलग हो जाता। यानी सृष्टि और सृष्टा एक ही है। जो हमें दिखाई पड़ने लगता है, वह सृष्टि है। जो प्रकट हो जाता है, वह सृष्टि है, और जो

अप्रकट रह जाता है और दिखाई नहीं पड़ता है, वह सृष्टा है। जैसे नृत्यकार अभी नहीं नाच रहा है, तो अभी प्रकट नहीं हुआ है नृत्य। कहीं सोया पड़ा है। नाचेगा तो प्रकट हो जाएगा।

परमात्मा और प्रकृति या सृष्टा और सृष्टि दो चीजें नहीं हैं। इन्हें एक बार दो मान लिया, तो सवाल उठेगा। इन्हें अगर एक ही मान लिया, तो ऐसा नहीं है कि कोई है तय करनेवाला और हम उसे निभानेवाले हैं।नहीं, वह जो तय करनेवाला है, वह हम ही हैं। तय करनेवाला और हम दो नहीं हैं। वह हमीं हैं। और वह हमारे कृत्य से ही तय करता है। उसके पास तय करने का और कोई उपाय नहीं है। यानी हम ही हैं वह। तो जब हम कुछ कर रहे हैं, तब हम एक अर्थ में परिपूर्ण स्वतंत्र हैं कि हम वही हैं, और दूसरे अर्थ में हम बिलकुल बंधे हैं। वह इस अर्थ में कि हम वह पूरे नहीं हैं, वह पूरा हमसे बहुत बड़ा है। हम सिर्फ उसके एक हिस्से हैं।

सागर की एक लहर है। एक अर्थ में वह स्वतंत्र है। हिलती है, डुलती है, इस अर्थ में स्वतंत्र है कि वह भी सागर का हिस्सा है, लेकिन इस अर्थ में परतंत्र हैं कि वह सिर्फ एक लहर है और सागर बहुत बड़ा है। और भी लहरें हैं, और ऐसा भी सागर है, जहां लहरें नहीं भी हैं। इसका मतलब यह हुआ कि हम जो कर रहे हैं अगर हम अपने को अलग मान लें तो यह सवाल उठता है कि हम करनेवाले हैं या नहीं हैं और अगर हम वही हैं, करनेवाले ही हम हैं, तो यह सवाल ही नहीं उठता कि हम बंधे हैं या स्वतंत्र है। और जो भी हो रहा है, वह हमारे द्वारा ही हो रहा है। वह हमारे बिना हो भी नहीं सकता। सारी कठिनाई इसलिए पैदा हुई है कि कहीं भूलकर हमने अपने को अलग मान रखा है, एक-एक लहर अपने को अलग मान रही है। इसलिए लहर पूछती है कि मैं स्वतंत्र हूं कि परतंत्र हूं? लेकिन पूछने में उसने यह मान ही लिया है कि मैं अलग हूं। और अलग है तो यह प्रश्न सार्थक है कि स्वतंत्र है या परतंत्र! और अगर अलग है ही नहीं, तो स्वतंत्र किससे होना है? परतंत्र किससे होना है?

मेरी दृष्टि में हम न स्वतंत्र हैं, और न परतंत्र हैं, क्योंकि हमारे अलावा कुछ है ही नहीं। इसी अर्थ में हम परतंत्र हो सकते हैं कि सिर्फ एक हिस्से हैं, एक लहर हैं, पूरा सागर नहीं हैं। अगर हमें पता चल जाए कि यह लहर सागर के सिवाय कुछ भी नहीं है तो इस अर्थ में हम स्वतंत्र हो जाते हैं। मेरा मतलब यह है कि अहंकार जितना गहरा है, उतने ही हम परतंत्र है। अहंकार जितना विसर्जित है, उतने हम स्वतंत्र हैं। अहंकार के अतिरिक्त हमारी और कोई परतंत्रता नहीं है। हम हैं, यही हमारी परतंत्रता है। अगर हम नहीं हैं, तो परतंत्रता का कोई उपाय नहीं है। स्वतंत्रता ही शेष रहेगी। अहंकार अकेली परतंत्रता है, और अहंकार का मिट जाना स्वतंत्रता है। परमात्मा अगर है तो ऐसा ही है, जहां अहंकार नहीं है। और हम अगर हैं, तो ऐसे ही हैं जहां अहंकार है। इसलिए हम परमात्मा से भिन्न होने के खयाल में हैं।

मैं एक कहानी कहता रहा हूं निरंतर। एक रूसी कवि ने एक कविता लिखी है। एक अंगूर की बेल है, जो राजमहल पर चढ़ी हुई है। और अंगूर की बेल ने भी सुना है राजमहल में विवाद होते बहुत बार। राजा संन्यासियों से पूछता है कि हम स्वतंत्र हैं कि परतंत्र! बहुत विवाद सुने

हैं उसने। और एक दिन उसने चर्चा सुनी कि कोई आदमी कह रहा है कि सब स्वतंत्र है, क्योंकि परमात्मा है ही नहीं। परमात्मा ही नहीं है, तो परतंत्र कौन करेगा? दो रास्ते हैं स्वतंत्रता के, या तो परमात्मा न हो तो हम स्वतंत्र हैं, या हम न हों तो स्वतंत्र हैं, क्योंकि परमात्मा ही रह जाता है। दो हों तो परतंत्रता रहेगी; क्योंकि दूसरा जो है, वह किसी न किसी तरह की सीमा बांधेगा, और परतंत्र करेगा। अगर एक ही है, तो ही स्वतंत्रता हो सकती है। नास्तिक एक तरह से स्वतंत्र होने की कोशिश करता है, ईश्वर को खत्म करके। आस्तिक एक तरह से स्वतंत्र होने की कोशिश करता है, अपने को खत्म करके। किंतु अगर एक रह जाए, तो परतंत्रता का कोई उपाय नहीं है।

तो उस दिन उसने सुना है कि परमात्मा है ही हनीं इसलिए सब स्वतंत्र हैं। तो उस दिन उस बेल ने परमात्मा से चिल्लाकर कहा कि तू चूंकि है ही नहीं, और हम स्वतंत्र हैं, इसलिए आज से मैं बढ़ने से इनकार करती हूं। बहुत हो गया, बढ़ते-बढ़ते परेशान हो गयी, थक गयी। कितने पत्ते निकाले, कितने अंगूर निकाले। हर वर्ष वही-वही काम। बहुत थक गयी, अब बंद करती हूं। उसने कहा, अब मैं स्वतंत्र हूं तो अब बंद करती हूं यह बढ़ना। उसने यह कहा जरूर, लेकिन दूसरे दिन सुबह देखा कि बढ़ना तो हो गया है। पत्ते नए निकल आए हैं, बेल लंबी हो गयी है। उसने बहुत चिल्ला-चिल्लाकर कहा कि मैं स्वतंत्र हूं, अब मुझे नहीं बढ़ना है, लेकिन वह रोज बढ़ती चली गयी।

बेल किससे स्वतंत्र होना चाह रही है? बढ़ना बेल का ही हिस्सा है। इसलिए स्वतंत्र होने का कोई उपाय नहीं है। हम सिर्फ उससे स्वतंत्र हो सकते है, जो हमसे अलग और भिन्न है। हम उससे स्वतंत्र कैसे हो सकते हैं, जो हमीं हैं? अब बेल का बढ़ना जो है, उसकी जो ग्रंथि है, वह तो उसका स्वभाव है, और वह कहे कि अब मैं बढ़ना बंद करती हूं, अब मैं स्वतंत्र हो गयी, अब मैं नहीं बढ़ती! लेकिन उसे बढ़ना पड़ता है। इसलिए में वह समझ नहीं पा रही है। बेल का होना, उसके बीइंग का ही बढ़ना है। ये दोनों दो चीजें नहीं हैं बल स्वतंत्र हो जाए। बेल तो बढ़ेगी ही, बेल तो फलेगी ही। यह फैलना और बढ़ना एक अर्थ में परतंत्रता है; और अगर बेल बढ़ने और फलने से अपने को अलग समझ ले। अगर बेल ऐसा समझती हो कि बढ़ना, पत्ते लगना, फलना, ये अलग चीजें है, मैं अलग हूं--ऐसी कहीं बेल है, जो न बढ़ती हो, न पत्ते लगते हो, न फल आते हों? ऐसी बेल ही नहीं है। असल में बेल एक नाम है इसी सब ग्रोथ का, बढ़ने का, फलने का, फूलने का, फल लगने का। इन सब का इकट्ठा नाम बेल है। और बेल को भ्रम हो जाए कि मैं अलग हूं, और वह कहे कि मैं नहीं बढ़ूंगी, तो कोई उपाय नहीं है। तब वह परतंत्र अनुभव करेगी। तब वह बेल कहने लगी, मैं बड़ी परतंत्र हूं, बढ़ना नहीं चाहती हूं और बढ़ रही हूं, और मैं फूलना नहीं चाहती और फूल रही हूं।

लोगों को भी अगर यह खयाल हो जाए कि हम अलग हैं, तो सवाल उठना शुरू हो जाता है कि हम परतंत्र हैं या स्वतंत्र हैं? और अगर यह खयाल बैठ जाए कि मैं अलग हूं, तो सवाल ही कहां है परतंत्रता-स्वतंत्रता का? यानी परतंत्रता-स्वतंत्रता का सवाल ही अहंकार केंद्रित है।

और जब तक अहंकार है, तब तक वह सवाल मिट नहीं सकता है, चाहे कोई उपाय करो। कोई कहे कि बिलकुल स्वतंत्र हो, तो भी यह बात हल नहीं होती; क्योंकि आपके मां-बाप ने जो आपको अणु दे दिया है, आप उससे कैसे स्वतंत्र है? और वह अणु पहले से चला आ रहा है। उस अणु में लिखा था कि इतनी उम्र में आपके बाल सफेद हो जाएंगे। उस अणु में यह भी लिखा था कि आपका रंग क्या होगा। और उस अणु में यह भी लिखा था कि मस्तिष्क कैसा होगा। उस अणु में चमड़े का रंग भी था और लंबाई भी भी शरीर की, और उस अणु में गहरे में यह भी तय था कि यह अणु कितनी देर तक चल पाएगा, और बिखर कर टूट जाएगा। और मृत्यु आ जाएगी। उस अणु में यह सब किसी बहुत गहरे कोड में लिखा था। तो स्वतंत्र कैसे हैं?

स्वतंत्रता हल नहीं करती। और अगर कोई कहे कि बिलकुल परतंत्र हैं, तो बात झूठी है। बात इसलिए झूठी है कि अगर हर परतंत्र हैं बिलकुल, तो मैं यही बैठ जाता हूं और तब जो मैं कर रहा हूं, वह खत्म हो जाएगा। मैं बैठता हूं, वह सब खत्म हो जाता है, फिर वह नहीं चलता। मैं चलाता हूं, तो वह चलता है।

मोहम्मद का एक शिष्य था हजरत अली। वह एक गांव से गुजर रहा है। मोहम्मद साथ हैं। हजरत अली ने मोहम्मद से पूछा कि मैं बड़ा परेशान हूं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र है। मोहम्मद ने कहा, तू एक पैर ऊपर उठा ले, जो भी तेरी मरजी हो। तो उसने बायां पैर उठा लिया। मोहम्मद ने कहा, अब तू दूसरा पैर भी ऊपर उठा ले। उसने कहा, अब बहुत मुश्किल है। मोहम्मद ने कहा, लेकिन पहले मुश्किल नहीं था, दायां भी उठा सकता था। अब मुश्किल हो गया है क्योंकि बांया तूने उठा लिया है। मुश्किल इसलिए हो गया है कि बाएं को उठाए हुए हो। बाएं को नीचे रख दो तो अभी दायां ऊपर उठ जाएगा। अली ने कहा, मैं समझा नहीं। मोहम्मद ने कहा, मैं यह कह रहा हूं कि आदमी आधा परतंत्र है, और आधा स्वतंत्र है। एक पैर उठा लेता है, और दूसरा तब बंध जाता है। क्योंकि जब भी हम एक चीज चुनते हैं तब और चुनाव खत्म हो जाता हैं।

अगर मैं आपको घृणा करता हूं, तो प्रेम करना मुश्किल हो जाता है। मैंने चुनाव कर लिए हैं। बायां पैर उठा लिया है, अब दायां नहीं उठता है। प्रेम करता हूं तो घृणा करना मुश्किल हो जाता है। तो मेरी स्वतंत्रता, प्रतिपल मेरी परतंत्रता भी निर्मित करती है। क्योंकि मैं जो चुन लेता हूं, वह बंद हो जाता है, जो मैं छोड़ देता हूं, वह छूट जाती है। तो मोहम्मद उससे कह रहे हैं कि तू आधा स्वतंत्र है और आधा परतंत्र है।

लेकिन, मेरा मानना यह है कि ये दो उपाय हैं--एक रास्ता यह है कि आदमी कहे कि बिलकुल परतंत्र है, जैसा भाग्य वादी कहते हैं। और एक रास्ता है, जिसे पुरुषार्थवादी कहते हैं कि आदमी बिलकुल स्वतंत्र है। वह दोनों गलत सिद्ध हुए हैं। एक रास्ता मोहम्मद का है। मोहम्मद कह रहे हैं कि आदमी आधा परतंत्र है और आधा स्वतंत्र है। यह तीसरा रास्ता है। मैं इसको भी गलत मानता हूं। क्योंकि मेरा मानना है। कि स्वतंत्रता और परतंत्रता आधी आधी जुड़ी ही होती। असल में स्वतंत्र-परतंत्रता में जोड़ ही नहीं हो सकता। इनमें कोई ताल-

मेल ही नहीं है। स्वतंत्रता का परतंत्रता से कैसे ताल-मेल होगा? यह कोई बायां और दायां पैर नहीं है। दाया और बांया पैर बिलकुल एक जैसी चीजें हैं। स्वतंत्रता-परतंत्रता बिलकुल उल्टी चीजें हैं। कोई मेल नहीं हो सकता।

तो आदमी आधा परतंत्र और आधा स्वतंत्र है। यह असंभव है। मैं यह कहता हूं कि चौथा विकल्प है और वह मेरा विकल्प है कि न आदमी स्वतंत्र है, न परतंत्र है। क्योंकि आदमी के अलावा कोई है ही नहीं कि जिससे वह परतंत्र होगा, या जिससे वह स्वतंत्र हो जाए। वही है। परतंत्र होने के लिए भी कोई चाहिए, और स्वतंत्र होने के लिए भी कोई चाहिए। किसी से हम स्वतंत्र होंगे और अगर कोई भी नहीं है, एक ही ऊर्जा काम कर रही है, तो कैसी परतंत्रता और कैसी स्वतंत्रता?

तो चार विकल्प हैं। उनमें तीन को मैं गलत मानता हूं। न तो आदमी परतंत्र है, न आदमी स्वतंत्र है, न आदमी दोनों है। आदमी दोनों नहीं है। क्योंकि आदमी जैसी कोई चीज ही नहीं है, जो कि हो सके। वह ईगो नहीं है, वहां कोई अहंकार ही नहीं है, वहां कोई वस्तुतः कुछ नहीं है। बुद्ध नहीं छू पाता। बुद्ध आत्मा को इनकार कर देंगे। इतना परमात्मवादी आदमी नहीं हुआ है दुनिया में, जो आत्मा को भी इनकार कर दे। क्योंकि वह यह कहते हैं कि अगर आत्मा है, तो परमात्मा कैसे हो सकेगा? अगर तुम हो, तो गड़बड़ हो जाएगी। बुनियादी बात यह है कि तुम नहीं हो। तुम हो ही नहीं।

प्रश्न--आपने कहा, एक पैसेज है, स्वतंत्र हैं, दूसरा स्वतंत्र नहीं हैं। तीसरा उदाहरण आपने दिया कि बोथ आर फिफ्टी-फिफ्टी। आपने चौथा विकल्प सजेस्ट किया कि न स्वतंत्र हो, न परतंत्र हो, न फिफ्टी-फिफ्टी हो, कुछ नहीं हो...

हां, इसका मतलब साफ तुम्हें हो जाएगा। इसको अगर ठीक से समझोगे, तो इसका मतलब बहुत साफ हो जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैं अकेला ही हूं, तो न स्वतंत्र होने का उपाय है, न परतंत्र होने का उपाय है; क्योंकि मुझसे दूसरा चाहिए। समझे न? मुझसे दूसरा चाहिए।

और चूंकि एक ही ऊर्जा है जगत में, एक ही जीवन है। वृक्ष में भी वही है, आप में भी, मुझ में भी और उनमें भी एक ही जीवन है। न वह परतंत्र हो सकता है, न वह स्वतंत्र हो सकता है; क्योंकि कोई उससे अलावा नहीं है। तो यह जहां स्वतंत्र भी नहीं है, परतंत्रता भी नहीं है, उसका गहरा मतलब यह हुआ कि यहां अहंकार ही हनीं है अलग-अलग, यहां एक ही परमात्मा है परमात्मा को तुम स्वतंत्र नहीं कह सकते हो,क्योंकि उसके परतंत्र होने का उपाय ही नहीं है।

जो परतंत्र हो सके, उसको हम स्वतंत्र भी कह सकते हैं। और तुम परमात्मा को परतंत्र नहीं कह सकते; क्योंकि उसे कोई परतंत्र करनेवाला नहीं है, वह अकेला ही है, एकदम अकेला है। अकेला ही है। और हम सब उस अकेले के हिस्से हैं। यानी हमसे भिन्न कुछ है ही नहीं। अगर इस भांति दिखाई पड़ जाए, तो स्वतंत्रता-परतंत्रता का प्राब्लम गिर जाता है। उत्तर नहीं देना है। हूं मैं। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि वह प्रश्न ही गलत है। प्रश्न है ही नहीं कहीं। वह

अहंकार से पैदा हुआ है। अहंकार सबसे बड़ा झूठ है। इसलिए अगर अहंकार को मान लेते हो, तो तुम कोई सवाल हल कर नहीं पाओगे; क्योंकि तुमने पहले झूठ मान ही ली।

मैं अभी अमृतसर में था। एक वेदांती थे स्वामी हिमगिरी। वे मुझसे कुछ नाखुश रहे होंगे। मेरी बातों से बहुत से लोग नाखुश हो जाते हैं। जो नहीं समझ पाता है, वह नाखुश हो जाता है। तो वे सीधे मेरे विवाद में पड़ गए। मैं बोला उन्होंने खड़े होकर कहा कि मैं शस्त्रार्थ करूंगा विवाद करूंगा। तो मैंने कहा, कैसे वेदांती हो? विवाद किससे करोगे? कहते हो, अद्वैत है। विवाद किससे करोगे? कहते हो कि एक ही है तो विवाद किससे करोगे? मुझे मानते हो अलग? तो फिर विवाद हो जाए लेकिन तब तुम पहले ही हार गए। तब तुम अद्वैत को सिद्ध न कर पाओगे। तुम अद्वैत को अब सिद्ध न कर पाओगे, क्योंकि विवाद किससे? अगर तुम कहते हो कि आप गलत कहते हैं, तो भी तुम यह कहते हो कि परमात्मा गलत भी बोलता है। और क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह है कि परमात्मा गलत भी बोलता है कभी। तो परमात्मा के गलत और सही होने का निर्णय कौन करेगा? परमात्मा गलत बोलता है, वह ठीक है। कि परमात्मा सही बोलता है, वह ठीक है? परमात्मा ही दोनों बोलता है। तो मैंने कहा, अद्वैतवादी हो, तो विवाद का उपाय नहीं है। अगर द्वैतवादी हो, तो विवाद हो सकता है, लेकिन तब तुम हार से शुरू करते हो! फिर अद्वैत की बात मत करना। वह प्रश्न नहीं उठता, फिर प्रश्न क्या है? प्रश्न कहां है। फिर उन्होंने दूसरे दिन एक कहानी कही। यह बहुत पुरानी कहानी है।

दस आदमियों ने नदी पार की। पार जाकर गिनती की है, तो अपने को छोड़ता गया है हर आदमी और नौ का गिनता गया है। और तब वे रोने लगे हैं कि एक आदमी खो गया है। कोई पास से गुजरा है। उससे गिनती करवा दी है वे दस हैं। तो मैंने उनसे कहा कि यह कहानी शुरू से ही गलत है। शुरू से गलत इसलिए है कि नदी के उस पार वह दस की गिनती करके चले थे। अगर दस की गिनती उन्होंने ही की थी, तो बड़े पागल आदमी थे कि इस पार गिनती ठीक रही है, और उस पार गए तो भूल गए। यह पता कैसे था कि वे दस थे। गिनती नदी के इस पार की होगी। और जब गिनना जानते थे, तो हद की बात है! नदी बड़ी अदभुत थी कि उसमें से गुजर गए--आदमी अपने को गिनना भूल गया और बाकी को गिन लिया।

तो मैंने कहा, इस कहानी से कुछ चलेगा नहीं, क्योंकि इसमें पहले यह बताना पड़ेगा, कि दस की गिनती हुई कैसे? किसने की थी वह गिनती? और अक्सर ऐसा होता है कि सवाल के पहले ही गलती हो जाती है। और फिर हम पीछे हल करने बैठते हैं। और तब सब मुश्किल हो जाती है। कहीं न कहीं कोई भूल हो गयी है। कहीं कुछ हाइपोथेटिकल भूल है जो शुरू में खड़ी हो गयी है, इसलिए फिर कभी हल नहीं हो पाती है! यह जो हम पूछते हैं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र? इसमें हमने आदमी को मान लिया, वही भूल हो गयी है। और आदमी है नहीं। और सवाल आदमी के मानने से शुरू हुआ है, और आदमी है नहीं। ऐसा

कोई नहीं है एनटाइटी में, अलग-अलग फिर सवाल गिर जाता है। मैं सवाल का उत्तर नहीं दे रहा। मैं यह कहता हूं, सवाल गलत है।

प्रश्न--कोई हक नहीं है न किसी को बुरा या भला कहने का?

ओशो--हक ही नहीं, क्योंकि कोई है ही नहीं वहां? वहां कोई है नहीं।

बंबई

१४-९-६९

मेरा अंतर-सहयोग का सत्य

प्रश्न--अस्पष्ट है।

ओशो--तो हो सकता है, उस काल के एक खंड को देखा है उसने, इस लिए इतिहास लिख सकता है। हमारी काल की अनुभूति भी लंबी है। यह हो सकता है कि हमने काल को इतनी लंबाई पर देखा। जैसे समझें कि कुछ कीड़े हैं, जो वर्षा में ही पैदा होते हैं, और वर्षा में ही मर जाते हैं। उन्होंने न सर्दी देखी, न गर्मी। अगर तीनों कालों को देखनेवाला कोई कीड़ा या पक्षी उनसे कहे कि तुम घबराओ मत, वर्षा फिर आएगी, तो कीड़े कहेंगे, वर्षा को तो फिर कभी आते देखा नहीं, सुना नहीं, मां-बाप ने कभी कहा नहीं, हमारे पुराण में लिखा नहीं कि वर्षा फिर कभी आती है। आएगी तो भी कभी नहीं। आती है, और गयी तो गयी। कभी नहीं आती, क्योंकि वे कीड़े वर्षा में ही पैदा होते हैं और वर्षा में ही मर जाते हैं। उन्हें काल के दो और खंड हैं--और उन्हें यह खयाल में भी नहीं आता कि वर्षा एक घूमता हुआ जो काल-खंड है, थिर लौट आएगी। उसके साथ सब कीड़े भी लौट जाएंगे, और उसके साथ सब कीड़े भी विदा हो जाएंगे।

पर कीड़ा जो वर्षा में ही जीया है, यह बहुत कठिन है, यह बात। जो तीनों काल में जीया हो, उसके लिए यह मानना बड़ा मुश्किल होगा कि यह वर्षा फिर नहीं आएगी। उसने हजार बार इसे आते देखा है। यह भी मैं नहीं कहता हूं अभी। यानी इन धारणाओं में पूरब ने इतनी बड़ी घटनाएं देखीं, और वह ऐसी जगह से गुजरा, और फिर-फिर उसे लगा कि लौटना हो गया। उसने समय की बड़ी विस्तीर्ण धारणा बनायी, और अगर विस्तीर्ण बनाएंगे तो वर्तुल हो जाएगी, अगर छोटा सा बनाएंगे, तो स्ट्रेट लाइन छोटी ही हो सकती है।

यूक्लिड ने जब स्ट्रेट लाइन की बात ज्यामेट्री में कही, तो उसको खयाल नहीं था कि दो बिंदुओं को जोड़नेवाली निकटतम सीधी लाइन हो सकती है। दो बिंदु जोड़ें, तो सीधी लाइन हो जाती है। निकटतम मार्ग से जुड़ गए, तो सीधी लाइन हो जाती है। फिर अभी पचास वर्ष पहले जब नानयुक्लिडियन विचारक पैदा हुए, तो उन्होंने कहा, कोई सीधी लाइन है ही नहीं। क्योंकि सब सीधी लाइने गोल पृथ्वी पर खींचनी हों, तो वे सब किसी बड़े गोल खंड के टुकड़े हैं। इसलिए सीधी लाइन बिलकुल झूठी चीज है। बड़े वर्तुल के खंड हैं। और इतना बड़ा

है वर्तुल, इसमें दिखाई नहीं पड़ता। पृथ्वी का वर्तुल तो बहुत बड़ा नहीं है, समय का वर्तुल और बड़ा होता है। कल्प-महाकल्प की जो धारणा है वह और भी बड़ा वर्तुल है।

होता क्या है? हमारी धारणाओं पर निर्भर करता है। आज से कोई हजार साल पहले, तारे हमारे, वह बिलकुल घर की चांदनी थे। वहां स्पेस की धारण बड़ी छोटी थी। सूरज बहुत आगे था, चांद और आगे था, तारे बहुत ही आगे थे; क्योंकि जो छोटा था, वह पास था, जो बड़ा था वह दूर था, जो और बड़ा था और दूर था। तो, अगर हम हजार साल पीछे लौटे तो जिन लोगों ने दुनिया का नक्शा खींचा था, उसमें पृथ्वी सेंटर थी। चांद तारे, सब तारे उसका चक्कर लगा रहे थे। एक छोटा सा घर था, अर्थ सेंट्रेड था वह, और स्पेस कोई लंबी न थी, और आकाश सब कुछ था, जो एन्क्लोज करना था। आकाश की धारणा वह थी, जो चारों ओर से हमें ढांके हुए था। ढक्कन की तरह है कि जैसे उल्टा बर्तन पृथ्वी पर ढंका हो, ऐसा आकाश ढंका है। और दिखता भी है चारों तरफ से जमीन को छूते हुए, उल्टे बर्तन की तरह। ऐसी छोटी सी धारणा है। फिर जैसे ही हमारी समझ तारों के विषय में बढ़ तो सारी धारणा बदल गयी। और ऐसी विस्तीर्ण धारणा आयी कि तब आकाश का अर्थ वह नहीं जो घेरता है, तब आकाश का अर्थ हो गया कि वह, जो है, जिसमें सब समा जाते हैं। जब फिर वह और है वह फैलता ही चला जाता है। आकाश की एक अंतहीन धारणा हमारे खयाल में आयी। समय की अंतहीन धारणा अभी भी पश्चिम की समझ में नहीं आयी है। अभी भी समय के मामले में पश्चिम थोड़ा छोटा टुकड़ा लेकर जी रहा है।

प्रश्न--इसका कारण क्या यह नहीं हो सकता कि समय को साक्षीभाव से पश्चिम नहीं देख सका?

ओशो--साक्षीभाव से तो पश्चिम किसी चीज को नहीं देख सका। साक्षीभाव देखने पर न समय बचता है, न आकाश बचता है। यानी समय और आकाश को साक्षीभाव से देखा भी नहीं जा सकता। पश्चिम ने तो देखा ही नहीं है साक्षीभाव से टाइमस्पेस को। साक्षीभाव से देखे जाने पर वह बचता ही नहीं। जिन्होंने साक्षीभाव से देखा है, उन्हें वह माया हो गया है तत्काल, न हो गया है। उसे वह इनकार कर गया। क्योंकि साक्षीभाव से न देखिए, तो साक्षी भर नहीं बचता और सब हो जाता है। साक्षीभाव से देखने से साक्षी ही बचता है और खो जाता है। और साक्षीभाव से न देखिए, तो साक्षी भर नहीं बचता और सब हो जाता है। वह तो अगर हम ठीक से समझें तो बिकमिंग और बीइंग के बीच है साक्षी। सेतु है साक्षीभाव का। अगर साक्षीभाव पर जोर दिया, तो बाइंग बचेगा और बीमकिंग खो जाएगा। एकदम निषेध हो जाएगा बिकमिंग का। अगर साक्षीभाव छूटा, तो बिकमिंग बचेगी, और बीइंग का कोई पता नहीं चलेगा कि वह है भी या नहीं। और दो में से एक ही साथ बचता है, दोनों एक साथ बचते नहीं। और साक्षीभाव में जो हमारा कांशसनेस का सेंटर है, वह बदल जाता है।

जब तक मैं अपने को नहीं जानता हूं, तब तक आप मेरी चेतना के केंद्र हैं। क्योंकि मैं तो हूं नहीं। आपका मुझे पता नहीं है, तो आप मेरे केंद्र बनते हैं--आप आप, कोई मेरा केंद्र बने तो ही मैं जी पाता हूं। नहीं तो जीऊंगा कैसे? यानी दी अदर है, वह महत्वपूर्ण है; क्योंकि

मैं तो हूं नहीं। मुझे कोई काम मिले तो जी सकता हूं, विचार मिले तो जी सकता हूं, सपना देखूं तो जी सकता हूं, मित्र हों, दुश्मन हों, तो जी सकता हूं। तू चाहिए मुझे हर हालत में। अगर तू ही है, तो मैं गया; क्योंकि मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। मैं हूं ही नहीं। हम कहते हैं बहुत मैं, निरंतर दिन-रात, लेकिन सत्य है हमारे लिए "तू'। और जो हम इतना जोर से "मैं' "मैं' बार-बार कहते हैं, उसका भी कारण यही है कि "तू' सत्य मालूम पड़ता है। और मन कहता है कि "मैं' सत्य होऊं।

मन कहता है कि "मैं' सत्य होऊं। तो, हम इसलिए "तू' को निरंतर इनकार करते हैं, और "मैं' की घोषणा करते रहते हैं। लेकिन "तू' के बिना हम एक मिनट जी नहीं सकते। अगर कोई, जिसको मैं प्रेम कर सकूं, नहीं है, तो मेरा प्रेम गया। क्योंकि वह सदा तू पर निर्भर है। और क्रोध भी। मैं नहीं कर सकता हूं, अगर "तू' न हो। तो जीने का उपाय नहीं छूटता है, अगर "तू' नहीं। और हमारी चेतना "तू' पर खंडित होकर बंट जाती है। थोड़ी सी चेतना मेरे उस मित्र पर भी है मेरी, जो मेरा मित्र बनकर एक "तू' बना है; और थोड़ी उस दुश्मन पर भी है, जो एक दुश्मन बनकर मेरा "तू' बन गया है। और इस तरह मेरी चेतना खंडित, बंट गयी। और मैं तो हूं नहीं। इन्हीं सबका जोड़ मैं हूं।

इन्हीं सबने जो कहा है, इन्हीं सबने जो बनाया है, इन्हीं सबने जो माना है, उन सबको जोड़कर मेरी यह तस्वीर है जो मैं हूं। इसको मैं इगो कहता हूं। "तू' के आधार पर बनी हुई जो मेरी दृष्टि, धारणा है, मेरे बाबत, वह ईगो है, यानी ईगो "तू' की आंखों में झांका गया रिफ्लेशन है। उसे भी इकट्ठा मैंने कर लिया है, बुरा-भला जैसा भी है। वह हजार तरह से है, जो हजार आंखों से इकट्ठा किया हुआ है। उसमें अच्छा भी है, बुरा भी है। बड़ा भी है छोटा भी है। क्रोध भी हूं, प्रेम भी हूं, सब हूं उसमें मैं। और वह इकट्ठा करके उसके पकड़े हुए हूं; क्योंकि वह मेरे लिए है।

और जैसे ही मैं साक्षी बनूं, तो एकदम से ट्रांसफार्मेशन होता है चेतना के बिंदु पर कि जब मैं साक्षी बनता हूं, तो मैं केंद्र बन जाता है, तू परिधि पर हो जाता है। और जैसे-जैसे मैं उभरने लगता है, वैसे-वैसे तू विदा होने लगता है। क्योंकि जैसे-जैसे तू उभरता था, मैं विदा होता था। वह ऐसा ही है, जैसे कि हम पानी को भाप बनाए। जैसे-जैसे पानी भाप बनने लगा, तो पानी विदा होने लगा। और भाप को पानी बनाए, तो भाप विदा होने लगेगी। चेतना उस छोर से चलती है, तो तू बन जाता है, और मैं मिट जाता है। और चेतना इधर लौट आती है, तो उधर तू खाली छूट जाता है, और मैं बन जाता है।

इसलिए जिन्होंने भी साक्षी का प्रयोग किया उन्होंने कहा, मैं ही हूं अहं ब्रह्मास्मि। तू है ही नहीं। तू बिलकुल झूठ है। और फिर तू के जितने रूप हैं, सब वह निषेध कर गए। इस निषेध को माया कहता हूं। मैं यह जो निषेध है साक्षी की तरफ से किया गया, जो यह कह रहा है कि और कुछ भी नहीं है, बस मैं ही हूं, ब्रह्म मैं ही हूं। और ब्रह्म का इसलिए तू अर्थ नहीं होता है। ब्रह्म का भी मैं का ही अर्थ है, अहं ब्रह्मास्मि। वह यह नहीं कहता कि तुम ब्रह्म हो। तुम तो हो ही नहीं। तुम्हारा तो होना ही नहीं है, मैं हूं और मैं ब्रह्म हूं।

तो जगत माया हो जाता है तो उसमें से यथार्थ छिन जाता है। सच बात यह है कि और बड़े मजे की बात है कि चीज पर हम चेतना को केंद्रित करते हैं, वहीं यथार्थ पैदा होता है। मेरी दृष्टि में यथार्थ जो है, वह कंसेंट्रेटेड अटेंशन है। जिस चीज को भी हम पूरी एकाग्रता से ध्यान में। लेते हैं, वह हो जाती है यथार्थ। यथार्थता जो है, वह हम देते हैं उसको। और हम अपना ध्यान खींच लेते हैं, तो अयथार्थ हो जाते हैं। उसका होना जो है, एकदम तीखात्तीखा तो जब मैं आपको गौर से देखता हूं, तो मैं आपको यथार्थकर रहा हूं। यानी यथार्थ का मेरा मतलब यही है कि जब कोई ध्यान से आपको देखता है, और इसलिए हमारे मन में ध्यान से देखे जाने की बड़ी आकांक्षा है। और कोई कारण नहीं है। कोई हमें ध्यान से देखे! और जितनी आंखें हमें ध्यान से देखें, उतने हम रियल मालूम पड़ते हैं कि मैं भी हूं। कोई देखे और किसी की आंख जुड़ जाए मुझ पर, तो ही मुझे भी लगता है कि मैं हूं, नहीं तो गया। तो नेता की, गुरु की जो दौड़ है। उसे देखने में हमको यथार्थ मिल जाता है। और जिस चीज को हम देखते हैं वही यथार्थ हो जाती है।

अभी एक व्यक्ति है अमेरिका में, जो किसी भी चीज को सोचे, तो उसके सोचने के फोटोग्राफ लिए जा सके हैं, यह पहला मौका है। अभी मैंने उसका सारा साहित्य देखा जो दंग करनेवाला है।

प्रश्न--यानी भौतिक साक्ष्य भी उपस्थित किया जा सकता है?

ओशो--बिलकुल उपस्थित हो गया है, यानी जो आदमी कार के संबंध में सोचता है, उसकी आंख पर कार का चित्र उभर आता है। आंख में भी कार दिखाई पड़ती है और कैमरे के सामने आप आंख पकड़िए, तो कैमरा भी कार पकड़ता है। और वह आदमी फिर सोचता है और ऐसी चीजें नहीं; जो उसने नहीं देखी है, वह भी। जैसे ताजमहल--और वह सोच रहा है जोर से, सोचता रहेगा और फिर आंख खोलेगा, और कैमरे में ताजमहल आ जाएगा। वह गहरे अटेंशन का प्रयोग हुआ।

यहां काशी में एक विशुद्धान शून्य--विज्ञान वाले हैं--वह किसी भी चीज को, चिड़िया उड़ रही है उसको देखेंगे। आंख बद कर लेंगे, और चिड़िया फौरन गिर जाएगी और मर जाएगी। वे उसको गौर से देखेंगे, वह चिड़िया फड़फड़ाएगी और फिर उड़ जाएगी। यह सारा का सारा खेल ध्यान का है। हम जिस चीज पर ध्यान देते हैं, वह यथार्थ होनी शुरू हो जाती है, उसे आकार मिलने लगता है। यानी सच यह है कि हम एक दूसरे को निर्मित कर रहे हैं, पूरे वक्त। जैसा कि हम ध्यान दे रहे हैं वैसा ही वह निर्मित होता चला जा रहा है।

यथार्थ मनुष्य के ध्यान की बाई प्रोडक्ट है कि जैसा ध्यान हो, वैसी चीजें बन जाती हैं, वैसा हो जाता है। तो फिर जब ध्यान चीजों पर होता है, बाहर होता है, दी अदर पर होता है, तू पर होता है, तो भीतर उसकी धारा नहीं रह जाती, बाहर जाने लगती है। और जब बाहर जाने लगती है, तो भीतर शून्य हो जाता है। क्योंकि वहां ध्यान होगा, तो वहां भी यथार्थ आ सकता है। नहीं तो वहां भी नहीं आएगा। ध्यान जहां जाएगा, वहीं यथार्थ आ जाएगा। यथार्थ का मतलब ही है दिया हुआ ध्यान, दिया गया ध्यान। वह वहां शून्य हो

जाता है, इसलिए यथार्थवादी कह रहा है कि आत्मा नहीं है। कहां है आत्मा? शून्य हो गयी आत्मा। तो वह पदार्थ पर ध्यान दे रहा है। पदार्थ है।

इसलिए मेरा मानना है कि पदार्थवादी में और अध्यात्मवादी में बुनियादी भेद नहीं है, प्रक्रिया एक ही है, अध्यात्मवादी कह रहा है जगत नहीं है, और नहीं होने का दूसरा कोई कारण नहीं है। जगत उतना ही है अभी, जितना कि पदार्थवादी के लिए आत्मा है। वह उतना ही है, आकार नहीं ले पा रहा है, निराकार हो गया है। क्योंकि ध्यान जो आकार देता था, वह हट गया। और वह ध्यान अगर भीतर हो गया है केंद्रित, तो भीतर एक सत्ता उघड़ जाती है, जो थी। लेकिन ध्यान न होने से पड़ी रहती है, पड़ती रहती है अनंतकाल तक, अनंत जन्मों तक, और उसका कोई पता नहीं चलता। पता चलेगा ही कैसे? ध्यान देंगे तो पता चलेगा।

जो पोटेंशियल है, उसे एक्चुअल कर देता है ध्यान। जो अव्यक्त है, उसे व्यक्त कर देता है। और एक तरफ व्यक्त हो जाए, तो दूसरी तरफ अव्यक्त होगा; क्योंकि वहां ध्यान सिकोड़ लेना पड़ता है। और साक्षी में ध्यान सिकोड़ना पड़ता है। और उस पर लगा देना पड़ता है, जो भीतर है। तो दुनिया माया हो जाती है। जो लोग दुनिया को माया कह रहा हैं, और जो आत्माओं को इनकार कर रहे हैं, वे दोनों एक ही तरह के लोग हैं। दोनों सीक्रेट नहीं समझ पा रहे हैं। सीक्रेट केवल इतनी है कि जिस चीज पर ध्यान देते हो, वह हो जाता है, और जिस चीज पर ध्यान नहीं देते हो, वह नहीं होता है। दोनों अपत्तिजनम हैं। तो भी दोनों हैं, क्योंकि दोनों हैं। हम उसको ही उघाड़ पाते हैं, जिस पर ध्यान देते हैं। यानी अगर साक्षी होकर भी मैं उसको नष्ट कर दूं, या अपने आपको नष्ट कर दूं, तो दोनों ही भ्रामक हैं।

दोनों ही भ्रामक हैं। अधूरे हैं। आधे सत्य हैं। और इसलिए दुनिया मुश्किल में पड़ी हुई है। नास्तिक के पास भी आधा सत्य है और आस्तिक के पास भी आधा सत्य है। कहना चाहिए, एक ही चीज के दो पहलू हैं आधे-आधे। इसीलिए किसी को हरा नहीं पाते। वह हराएंगे कैसे? दोनों के पास आधा-आधा है।

प्रश्न--वह गैप और पार्टिसिपेशन जो दोनों में है, वह डिस्टर्ब पैदा कर देता है। और वह सिर्फ प्रेम, जो कि अभिव्यक्त है, सेवा के रूप में हम कहें या और किसी सृजनात्मक रूप में कहें, पार्टीसिपेशन को वही सिद्ध करता है।

ओशो--ठीक कहते हैं, ठीक कहते हैं। इसलिए ध्यान का जो दूसरा हिस्सा है, वह प्रेम है या करुणा है। तब पूरा सत्य प्रकट होगा।

प्रश्न--लिव कर सकते हैं तब?

ओशो--लिव कैसे करेंगे? असल में पूरे न हो पाए, तो कभी नहीं लिव कर सकते। क्योंकि आधा जो विरोध में इनकार कर दिया है, वह चारों तरफ से घेरे हैं, और कारागृह बन गया है। वह कारागृह बन गया है, अब वह मुक्ति नहीं ला रहा है। गौतम बुद्ध ने बहुत अदभुत व्यवस्था की है। या तो ध्यान के प्रयोग के पहले, या बाद, किसी भी हालत में, जिसको हमने ब्रह्म-विहार कहा है--करुणा, मैत्री उसके भाव का हममें उदय होना चाहिए। क्योंकि

तब, जैसा मैंने अभी कहा कि या तो तू या मैं, यह हमारा सामान्य डिवीजन है देखने का, ध्यान का। लेकिन ऐसा भी हो सकता है, तू भी और मैं भी। या ऐसा भी हो सकता है, न तू, न मैं। यह प्रेम का अनुभव होगा। प्रेम के अनुभव हम दो ढंग से कह सकते हैं। न तू, न मैं, कोई और। उसी को परमात्मा कहेंगे। परमात्मा को अगर मैं मैं से आइडंटीफाई करता हूं, तो मैं आपका निषेध कर देता हूं और अगर तू से करता हूं तो मेरा निषेध हो जाता है। मैं परमात्मा की परिभाषा करता हूं, जो मैं भी है और हूं भी है--जहां मेरा मैं और आपका तू दोनों आकर मिल गए हैं और एक हो गए हैं।

प्रश्न--तब परम हो गए हैं?

ओशो--तब वह परम हो गया है। तब उसने दोनों घेर लिए हैं। इसलिए परमात्मा में सब विरोध समाहित होंगे। यूनिटी अभी अपोजिट है।

प्रश्न--कम हो गया?

ओशो--जैसे ही यूनिटी वह दोनों कट गए। और उन दोनों की बीमारी गयी। दोनों का निषेध गया। और फिर या तो रास्ता यह है कि तू भी और मैं भी। वह भी जोड़ता है। वह एक ही बात को, विधेय और निषेध से कहने की बात है। तो अकेला ध्यान, इस तरह के वादों को जन्म देता है, जो जगत को मिथ्या कर देते हैं और जीवन को अयथार्थ कर देते हैं। और एक तरह से जीवन की जो विस्तीर्ण क्षमता है, उसको सिकोड़कर मार देते हैं। कर्म भी नुकसान पाता है। सृजन भी नुकसान पाता है--माया का क्या सृजन करना और क्या काम करना? कला--सबको घातक प्रहार होते हैं। विज्ञान तो बुरी तरह मर जाता है। यानी विज्ञान सर्वाधिक मर जाता है, क्योंकि विज्ञान तो यथार्थ है कुछ, तो ही उसकी खोज में जा सकता है। कला थोड़ी बहुत बच सकती है; क्योंकि कल वह फिक्शन में भी जाने की हिम्मत रखती है। यानी अगर हम जगत को माया भी कह दें, तो भी कलाकार को बहुत दिक्कत नहीं होती है। वह कहता है, माया भी है काफी। वह जा सकता है। इसलिए भारत जैसे मुल्कों ने, जहां साक्षी पर जोर दिया, विज्ञान तो बुरी तरह मरा, कला फिर भी बच गयी। यानी कला की, मैं मानता हूं, विज्ञान से ज्यादा गहरी गति है। इन अर्थों में कि उसे माया से भी बाधा नहीं पड़ती। वह माया में भी प्रवेश कर सकती है, वह स्वप्न को भी सत्य मान सकती है। इसलिए इतनी ही थोड़ी कल। जिंदा रह सकी। लेकिन विज्ञान तो बुरी तरह मर गया; क्योंकि विज्ञान तो शुरू ही इससे होता है कि यहां यथार्थ है। अगर माया है तो झाड़ भी कर देगी, फिर माया में क्या सत्य खोजना है? विज्ञान मरता है, कला मरती है। क्योंकि जो सपना बिलकुल सपने जैसा मालूम होने लगे, उसके भी प्राण निकल जाते हैं। सपने के प्राण इसमें हैं कि वह यथार्थ जैसा मालूम हो, तो ही उसका प्राण है। अगर प्रेयसी माया मालूम होने लगे, तो मर जाएगी। उसके प्राण तो निकल गए। वह है, तो सार्थकता जुड़ती है।

तो मैं बातें कर रहा हूं, वह तीसरे विकल्प की हैं। यानी मैं केवल ऐसे, न केवल साक्षी पर जोर देना चाहता हूं; क्योंकि वह एकांगी है और न अकेली करुणा पर जोर देना चाहता हूं, वह भी एकांगी है। वह तू को ध्यान में लेती है। प्रार्थना तू को ध्यान में लेती है। प्रेम भी तू

को ध्यान में लेती है। ये एकांगी हैं। इसलिए किसी न किसी रूप किसी न किसी रूप में प्रज्ञा और करुणा, ध्यान और प्रेम दोनों एक ही साधना के प्रमुख हिस्से होना चाहिए कि मैं ही हो सकूं, और दूसरा मिट न जाए। बल्कि मेरे होने में दूसरे का होना भी विकसित हो। तो यहां, उस हालत में जो दो विरोधी छोर हैं, जो एक-दूसरे को मिटाकर जीते और बनते हैं, अगर ये दोनों बचें, या दोनों मिट जाए, तो जो शेष रह जाता है, वही सत्य है। इसलिए अकेला साक्षी उस सत्य तक नहीं ले जाएगा, और न अकेला विज्ञान उस सत्य तक ले जा सकता है। उस सत्य के लिए किसी न किसी रूप में धर्म और विज्ञान का गहरा ताल-मेल चाहिए। इसलिए परमात्मा की खोज सर्वाधिक कठिन है। आत्मा की खोज सरल है, और इसलिए कुछ लोग आत्मा पर रुक गए--जैसे, जैन। साक्षी पर पूरा बल दिया, आत्मा रह गयी।

प्रश्न--यानी उनका व्यवहार पक्ष पुष्ट हो गया?

ओशो--व्यवहार पक्ष तो पुष्ट हुआ। लेकिन परमात्मा तक गति नहीं हुई। गति हो गयी आत्मा की तरफ। मेरा कहना यह कि साक्षी के गहरे प्रयोग ने उन्हें आत्मा से बाहर नहीं जाने दिया। आत्मा पर्याप्त हो गयी। वह ठहर गयी वहां बाद में।

प्रश्न--मैं पार्टीसिपेशन की बात कर रहा था कि आत्मा तक ही मैं पहुंच गया, लेकिन आत्मा, आत्मा ही नहीं है, अगर वह पार्टीसिपेट नहीं करती है?

ओशो--नहीं है, नहीं है।

प्रश्न--अगर यह चीज आ जाए, तो यह जो हमारी भ्रामक स्थितियां पैदा हुई हैं मन में, वह निकल जाएंगी?

ओशो--बिलकुल नहीं निकल जाएंगी। असल में मैं हूं ही तब, जब मैं पार्टीसिपेट करता हूं।

प्रश्न--और वह भी सर्वमय भाव से सर्व भाव से नहीं, सर्वमय-भाव से?

ओशो--मैं कहूंगा, भाव लें ही न बीच में। समग्र-भाव से यानी हम चुनाव न करें कि किस भाव से पार्टीसिपेट करूं उसे। पूर्णभाव से मेरा पार्टीसिपेशन हो तो टोटल पार्टीसिपेशन हो। एक फूल को भी देखने जाऊं, तो सिर्फ देखूं ही नहीं, बाहर ही खड़ा न रह जाऊं, फूल भी हो जाऊं। यानी ऐसा न हो कि मैं फूल के बाहर खड़ा होकर देख रहा हूं, आन लुकर हूं। मैं देखते क्षण में, मैं फूल ही हो गया हूं। फूल ऐसी कोई अलग चीज नहीं रह गयी है। मैं कोई अलग नहीं रह गया हूं। उस दर्शन के क्षण में फूल और मैं एक हो गया हूं--इतने समग्र-भाव से, कर्म भी इतने ही समग्र-भाव से, उठना-बैठना भी इतने ही समग्र-भाव से, ऐसे समग्र-भाव से जो पार्टीसिपेशन होगा कि जिस गहराई तक पार्टीसिपेशन हो, उस गहराई तक हम डूब रहे हों, जितने गहरे तक, उतने ही गहरे तक हमें पता चलेगा सत्य का। अगर मैं पूरा ही डूब जाऊं, तो ही पता चलेगा पूरे का।

हिंदी के एक प्राचीन कवि का वचन है कि जो पार निकल गए, वे अभागे हैं, जो डूब गए वे धन्यभागी हैं।

प्रश्न--पार जाए तो पर है; डूब जाए तो पार--यह कबीर का वचन है।

ओशो--एक और कवि का, जिसका वचन मैंने आपको कहा। जो डूब गए वे धन्यभागी हैं। जीसस ने एक जगह कहा है कि तुमने अपने को बचाया, तो तुम मिट जाओगे। तुम अगर मिट सके, तो फिर तुम्हें कोई नहीं मिटा सकेगा।

लाओत्से का एक वचन है। एक दिन अपने शिष्य से वह कह रहा है। शिष्य ने पूछा है कि आप कभी जिंदगी में हारे कि नहीं हारे? तो लाओत्से कह रहा है कि मुझे कोई कभी नहीं हरा सका। शिष्य ने पूछा,इसका सीक्रेट इसका राज? लाओत्से ने कहा, क्योंकि मैं हारा ही हुआ था, इसलिए मुझे कभी कोई नहीं हरा सका। उसी जीत मेरी ही जीत थी। तो उससे मैंने कहा, आओ मेरी कुर्सी पर बैठ जाओ। वह समझा की जीत गए और हम थे सहयोगी, हम उसके दुश्मन थे ही नहीं। हम लड़े ही नहीं कभी, तो हम हारते कैसे? हमने उसे जीताया था। और हम नहीं हारे इतने समग्र-भाव से। लाओत्से का शिष्य पूछता है, कभी आप कहीं अपमानित हुए? कहीं बाहर निकाले गए? तो लाओत्से कहता है, कभी नहीं। क्योंकि हम सदा उस जगह बैठे, जिसके पीछे और कोई जगह नहीं बचती थी। और बड़े लोगों को हमने निकाले जाते देखा, हमारी तरफ किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। हम उस जगह बैठे थे, जहां जूते निकाले जाते थे। वहां हम बैठ गए थे। हमें कोई भगाता भी नहीं था, और हम बड़े मजे में थे। और हम बड़ों-बड़ों को मारते देखते थे, अपमानित होते देख रहे थे। और हम हंस रहे थे। जो मान खोजेगा, वह अपमानित हो जाएगा। हमने मान खोजा ही नहीं। हमने अपमान को ही मान समझ लिया पार्टीसिपेशन इतना कि अपमान को मान समझ लिया। फिर बहुत मुश्किल हो गयी।

एक जंगल से गुजर रहा है लाओत्से। जंगल में बड़े पैमाने पर दरख्त काटे जा रहे हैं। बहुत कारीगर लगे हैं और एक दरख्त नहीं है, जो बिना कटे बचा है। किसी राजा का राजमहल बन रहा है। लकड़ी काटी जा रही है। फिर भी एक वृक्ष इतना बड़ा है कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां हैं। उस वृक्ष, की एक डाली भी नहीं काटी गयी है। तो लाओत्से ने कहा, आओ उस वृक्ष से पूछ लें कि राज क्या है? बचा कैसे? जब कि सब कटा जा रहा है। जंगल उजड़ा जा रहा है, तुम बचे कैसे? शिष्य से कहा, जाओ जरा वृक्ष से पूछो। यह वृक्ष बड़ा ज्ञानी मालूम होता है। शिष्य गए, चक्कर लगाकर आए कि वृक्ष तो कुछ बोलता नहीं। तो लाओत्से ने कहा, यह भी उसके ज्ञान का एक हिस्सा होगा। क्योंकि तुम जाकर बोले कि फंसे। लाओत्से ने कहा कि बोले कि फंसे। यह भी उसका हिस्सा होगा ज्ञान का। बड़ा होशियार है। फिर जाओ, उनसे पूछो जो दरख्तों को काट रहे हैं, दूसरे दरख्तों को, कि इस दरख्त को क्यों छोड़ दिया? शायद उनसे कुछ खबर लग जाए। क्योंकि कटने की घटना में दौ ही चीजें हैं--एक तो वृक्ष होशियार हो और दूसरे काटनेवालों ने कैसे छोड़ दिया! काटनेवाले तो कुछ न कुछ करते! शिष्य गए हैं, और जो कारीगर काट रहे हैं, दूसरे वृक्षों को, लकड़ियां चीर रहे हैं, उनसे पूछते हैं, उस वृक्ष को क्यों नहीं काटते? वे कहते हैं, वह वृक्ष बिलकुल लाओत्से जैसा है। उन्होंने पूछा, क्या मतलब? वह वृक्ष इतना टेढ़ा-मेढ़ा है कि उसकी कोई लकड़ी सीधी नहीं होगी। वे शिष्य पूछते हैं कि इसको काटकर जला तो सकते

हो। इस वृक्ष को जलाने से इतना धुआं छूटता है कि कोई उसका...तो तुम अपने गुरु से कहना कि वह वृक्ष बिलकुल लाओत्से जैसा है।

तो लौटकर शिष्य गुरु से कहते हैं कि कारीगर कहते हैं कि वृक्ष बिलकुल लाओत्से जैसा है। तो उसने कहा, वह मैं समझ ही गया। वह इतना बेकार है, वह इसलिए आखिरी जगह खड़ा हो गया है कि ज्यादातर किसी को जरूरत ही नहीं पड़ती उसकी। लेकिन देखा, वह आखिरी जगह होकर कितना फल-फूल रहा है। उसकी शाखाएं कितनी दूर तक चली गयी है। कितने लोग उसके नीचे विश्राम ले रहे हैं। अगर उसने जरा भी कोशिश की होती अच्छा बनने की, तो वह काट गया होता। जिन्होंने अच्छा बनने की कोशिश की, वे कट रहे हैं। तो लाओत्से ने कहा, ठीक कहा उन कारीगरों ने। और उनसे कह देना जब निकलें वहां से कि लाओत्से कहता था कि तुम ठीक कह रहे हो। हम भी उसी वृक्ष की तरह हैं, इसीलिए खूब बड़े हो गए हैं। कोई काटने ही नहीं आया, क्योंकि उस जगह खड़े हैं, और इतना हुआ निकलना है। और लकड़ी चीरनेवालों ने कहा, वह बिलकुल बेकार है। वह किसी काम का नहीं है।

अगर हम बहुत गौर से देखें, तो जितना गहरा पार्टीसिपेशन होगा, उतने ईगोलेस हो जाएंगे; क्योंकि ईगो ही तो पार्टीसिपेशन नहीं होने देता है। आपसे मैं नहीं जुड़ पाता हूं, क्योंकि मैं हूं। तब आपके आस-पास घूम सकता हूं, लेकिन प्रवेश नहीं होगा। प्रवेश हो तो आप भी टूटें, आप भी मैं हूं, मैं भी मैं हूं। दो मैं हैं चारों तरफ, तो पार्टीसिपेशन नहीं होगा। और दूसरे के लिए तो मैं कुछ कर नहीं सकता हूं; लेकिन मेरा मैं अगर विदा हो तो पार्टीसिपेशन हो जाता है, उसी वक्त हो जाता है। और जितना गहरा मैं चारों तरफ फैल जाऊं, यानी ऐसा न लगे कि आपकी आंख आपकी ही है, और ऐसा भी न लगे कि मेरी ही है, और उधर से भी मैं देखता हूं। ऐसा न लगे कि आपका हाथ आपका ही है, वह मेरा ही है और सभी हाथ मेरे हाथ हैं, इतना गहरा पार्टीसिपेशन हो जाए।

लाओत्से एक गांव से गुजर रहा है। एक आदमी ने पीछे से आकर लकड़ी से उस पर चोप कर दी है, तो वह गिर पड़ा है? वह आदमी भाग गया है? उसके शिष्य कह रहे हैं, क्या करना है? जाए, उसे पकड़ें? उसने कहा, नहीं, ऐसा मत करना; क्योंकि जब उसने मुझे मारा, तब मैं बिलकुल झुक गया। उसने हमला किया, मैंने बिलकुल जगह दे दी तो हमला किया। हम दोनों उस कृत्य में सहभागी हैं। वह मारनेवाला, मैं पिटनेवाला। मैं रेसिस्टेन्स नहीं था। इसी लिए पहली कहानी से जूडो निकला।

जूडो का नियम है कि आपको घूंसा मारे, उसका घूंसा पी जाओ। जूडो मत। पूरे शरीर को ऐसा छोड़ो, जैसे पूरा शरीर घूंसा पी जाए। तुम घूंसे के साथ एक हो जाओ। जूडो के विचारक कहते हैं कि अगर एक बैलगाड़ी जा रही हो, और उसमें एक आदमी होश में बैठा हुआ हो, और एक आदमी शराब पीए बैठा हो, और बैलगाड़ी उलट गयी, तो शराब जिसने पी है, उसको चोट नहीं लगेगी, जो होश में बैठा है, उसको चोट लग जाएगी। क्योंकि शराब पीनेवाला उलटने के लिए ही राजी हो जाएगा। वह तो कुछ चोट से रेसिस्ट नहीं करता। गाड़ी उलट गयी, वह भी उलट गया। यानी उसमें उसका कोई विरोध नहीं है कि अपने को बचाए

अपने को रोके कि मर न जाऊं। जूडो साइंस वह कहती है कि गाड़ी उलटने से हमारी हड्डी नहीं टूटती है। वह तो जब गाड़ी उलटी, तो तुम हड्डी कड़ी कर लेते हो कि बचा, वह हड्डी टूट जाती है। वह जो दफा, और फिर खड़ा हो जाता है। कुछ भी दुखता नहीं उसका, और हम तो गिर के गए। क्योंकि बच्चा भी शराबी की हालत में है। अभी गिरा, तो गिरने के साथ एक हो गया।

पार्टीसिपेशन का गहरे से गहरा मतलब यह होता है कि जो हो रहा है, जैसा हो रहा है, हम उसके लिए भी राजी हैं। जीसस गहरे से गहरे इस मामले में गए हैं। चूंकि क्रिश्चियनिटी बहुत गहरे में नहीं जा सकी, इसलिए, जीसस का फायदा दुनिया को नहीं हुआ। जीसस कहते हैं, जो तेरा कोट छीने, तू उसे अपने कमीज भी दे देना। पता नहीं, उसको कमीज की जरूरत हो, संकोच में छीनता नहीं हो। पार्टीसिपेशन हुआ यह। यह बात हुई न कि जो तुम्हारा कोट छीने, उसे जल्दी से अपने कमीज भी दे देना, क्योंकि ऐसा न हो कि बेचारा संकोच में कमीज न छीनता हो। तो आदमी तुझसे बोझ ढोने को कहे कि चल लेकर मील भर, तो तुम दो मील लेकर चले जाना। हो सकता है आदमी भला हो, दो मील तक कहने की हिम्मत न कर पाता हो।

जीसस का एक वचन इतना अदभुत है कि दुनिया में और किसी का नहीं है। वचन है रेसिस्ट नाट ईविल। इतनी हिम्मत कि बुराई से भी राजी हो जाओ। उससे भी पार्टीसिपेट करो टटोल। वह ऐसा नहीं कि भलाई से पार्टीसिपेट करेंगे, बुराई से नहीं करेंगे। सुख से पार्टीसिपेट करेंगे, दुख से नहीं करेंगे। मित्र से करेंगे, दुश्मन से नहीं करेंगे। जिंदगी से करेंगे, मौत से नहीं करेंगे। ऐसा चुनाव हुआ तो मुश्किल में पड़ जाएंगे हम। चुनाव हुआ कि तुम फिर बच गए, और फिर वह जोड़ नहीं हो पाया। चुनाव ही न हो, जो भी होगा पार्टीसिपेट करेंगे।

एक झेन फकीर अपने घर के बाहर बैठा हुआ है। कोई उससे आकर पूछता है, क्या कर रहे हो? वह कहता है, धूप ने बुलाया था तो बाहर आ गया हूं। वह यह नहीं कहता कि मुझे सर्दी लग रही थी इसलिए बाहर आ गया। वह कहता है, धूप ने बुलाया था तो बाहर आ गया हूं। वह बैठा रहा और धूप लेता रहा। थोड़ी देर बाद उठा और भीतर जाने लगा। पूछा कहां जा रहे हो? कहा, घर की छाया बुलाती है। यह नहीं कह रहा है कि मैं छाया में जाता हूं। कहता है कि घर की छाया बुला रही है। अब यह आदमी बिलकुल पार्टीसिपेट कर रहा है। इन अर्थों में पार्टीसिपेट कर रहा है कि यह जैसे है ही ह्नीं। धूप बुलाती है तो धूप में चला जाता है, छाया बुलाता है तो छाया में चला जाता है। जिंदगी ने बुलाया तो जिंदगी में आ गया, मौत ने बुलाया तो वहां जाने को राजी है यहां आना भी सुखद है, वहां जाना भी सुखद है।

इस स्थिति को ही मैं मुक्ति कहता हूं। पार्टीसिपेट जहां टोटल है, वहां मुक्ति है। वहां अब कोई बंधन नहीं है, क्योंकि पार्टीसिपेट करता है। ये दबाव मुझ पर बंधन डाल ही नहीं सकते। अब कोई उपाय नहीं है मुझे बांधने का। और ऐसी जीवन मुक्ति पूरे जीवन को स्वीकार करती है। उसमें कोई निषेध नहीं है--न पदार्थ का, न परमात्मा का, न शरीर का, ना आत्मा का। न

इंद्रियों का है, न भोग का। निषेध है ही नहीं। और जिसके चित्त में निषेध नहीं है, उसे मैं आस्तिक कहता हूं। आस्तिक से मेरा मतलब है कि जिसके मन में कोई निषेध न हो।

प्रश्न--किसी भी चीज में निषेध नहीं, लेकिन काम किया नहीं जाता है। हर काम किया नहीं जाता है, लोग समझ नहीं पाते हैं। यह भी क्या मुक्ति होता है?

ओशो--वह यही समझते हैं कि इसमें कुछ चोरी हो जाएगी, बेईमानी हो जाएगी, हत्या हो जाएगी। मजा यह है कि अगर यह खयाल है कि सब जैसा है, वह जो टोटेलिटी आफ थिंकिंग है, उसके साथ एक है, तो यह आदमी चोरी करेगा कैसे? यह संभव भी नहीं है। मेरा कहना है, जो सर्वभाव से, जो सर्व स्वीकृत का भाव है, उसमें जो बच जाए, वही पुण्य है। जो छोड़ना ही नहीं पड़ता, वह बचता ही नहीं। उसे कहीं छोड़ने का, निषेध करने नहीं जाना पड़ता। वह होता ही नहीं। वह वहां है ही नहीं।

लेकिन हमारी भूल यह है कि अंधेरे में रहनेवाले लोगों से--जो सदा से अंधेरे में रहे हो--जाकर अगर कोई कहे कि तुम दिया जला लो, तो वह कहेगा कि दिया तो जलाएंगे, लेकिन अंधेरा कैसे मिटाएंगे? वह पूछेंगे भर। जलाएंगे नहीं दिया। जलाए तो फिर सवाल ही नहीं उठता। सवाल तो अंधेरा निकालने का है। अब उनको समझाना मुश्किल है कि दिया जला, तो अंधेरा रहा ही नहीं; फिर निकालने का सवाल ही नहीं। या ऐसा भी कह सकते हैं, जब दिया जल गया, तो अंधेरा भी दिया ही हो जाता है। फिर अंधेरा भी उजाला ही है, फिर बात कहां है कि तुम जाओगे निकालने?

तो उसे डर लगता है कि चोरी कर रहा है, बेईमानी कर रहा है, झूठ बोल रहा है। उसे लगता है, तो सब स्वीकार लूं--झूठ भी बोलूं, चोरी भी करूं, पाप भी करूं? तो गलत सिखा रहे हैं आप। यह नहीं हो सकता, निषेध चाहिए, यह इनकार कि चोरी मत करना।

पहली दफा उपनिषद का अनुवाद हुआ जर्मनी में, तो जिन्होंने पहले अनुवाद की हवा पहुंचाई, उनके सामने सबसे बड़ा जो सवाल उठा, वह यह था कि ये धर्मग्रंथ कैसे हैं? क्योंकि इनमें नहीं लिखा है कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, टेन कमांडमेंट कहां हैं? ये धर्म-ग्रंथ हैं कैसा? इनमें कहीं लिखा ही नहीं है कि तुम क्या न करो। इनमें तो बस यही ब्रह्म, ब्रह्म--तो ये धर्म ग्रंथ संदिग्ध मालूम होते हैं। क्योंकि धर्म ग्रंथ को तो होना चाहिए साफ--क्या मत करो--पराई स्त्री को मत देखो, दूसरे को धन तुम्हारा नहीं है, झूठ मत बोलो, धोखा मत दो, दगा मत करो। यह सब लिखा नहीं है, तो ये धर्म ग्रंथ कैसे? लेकिन उन्हें पता ही नहीं कि जिसने यह लिखा है, वह सिर्फ नीति ग्रंथ रह गया है, धर्म ग्रंथ नहीं है। उसे धर्म ग्रंथ लिखने की जरूरत ही नहीं है।

अमृतसर में मैं एक वेदांत सम्मेलन में गया था। एक बड़े संन्यासी है। उन्होंने अपने प्रवचन के बाद नारे लगवाए लोगों से धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो। उनके पीछे बोला, तो मैंने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। वे कहते हैं धर्म की जय हो, फिर अधर्म बचेगा नाश करने के लिए? धर्म की जय हो गयी, बात खत्म हो गयी। आगे की बात की फिकर कैसे करोगे? यानी ऐसा ही है कि दिया जले और अंधेरा हटाएंगे।

अब इनको पता नहीं है कि यह जो नारा दिया जा रहा है कि धर्म की जय, तो हो गयी बात! अधर्म के नाश की बात पूरी हो गयी। ये दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के दो हिस्से हैं। डर लगता है, वही डेथ है, जो हमें धर्म तक नहीं पहुंचने देता है, नीति तक अटका लेता है। और नीति बड़ी साधारण बात है। धर्म को उससे क्या लेना-देना?

प्रश्न--असल में ईशावास्यापनिषद का जो वाक्य है--ईशावास्यं इदं सर्व...

ओशो--इदं को मध्ययुग में बिलकुल ही हम लोगों ने दृष्टि से बाहर कर दिया और उसमें पार्टीसिपेशन नहीं खोजा। उसके कारण हमारी कला में भी कुछ अति उठ आयी है; क्योंकि जब कवि या कलाकार छोटा बनेगा, तो कला कैसे छोटी बनेगी? और मुख्य समस्या आज की मेरी दृष्टि में, यानी मेरी अपनी समस्या यही है--अनुकृति और अभिव्यक्ति की।

बंबई,

१४-९-६९